नौवां अंक 2020

आकाशवाणी समाचार
ALL INDIA RADIO NEWS

आकाशवाणी

समाचार भारती

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एवं भारतीय संविधान

डॉअम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक
26, अलीपुर रोड, दिल्ली
DR. AMBEDKAR NATIONAL MEMORIAL
26, ALIPUR ROAD, DELHI
MONDAY CLOSED
Entry Free

प्रकाश जावडेकर
Prakash Javadekar

मंत्री
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन और
सूचना एवं प्रसारण
भारत सरकार
MINISTER
ENVIRONMENT, FOREST &
CLIMATE CHANGE AND
INFORMATION & BROADCASTING
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि समाचार सेवा प्रभाग, आकाशवाणी अपनी वार्षिक हिंदी गृह पत्रिका 'आकाशवाणी समाचार भारती' के नौवें अंक का प्रकाशन कर रहा है।

भावाभिव्यक्ति की क्षमता सभी में विद्यमान होती है, लेकिन अभिव्यक्ति के लिए एक उचित मंच की आवश्यकता होती है। मैं आशा करता हूं कि प्रभाग की गृह पत्रिका कार्यालय में कार्यरत अधिकारियों/कार्मिकों को भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त मंच उपलब्ध कराएगी।

'आकाशवाणी समाचार भारती' के नौवें अंक के सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(प्रकाश जावडेकर)

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

अमित खरे, भा.प्र.से.
सचिव
AMIT KHARE, IAS
Secretary

भारत सरकार
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF INFORMATION & BROADCASTING
SHASTRI BHAWAN, NEW DELHI-110001

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि समाचार सेवा प्रभाग: आकाशवाणी, नई दिल्ली द्वारा इस वर्ष हिंदी की गृह पत्रिका ''आकाशवाणी समाचार भारती'' का नौंवा अंक वर्ष 2020 प्रकाशित किया जा रहा है। उसमें समाचार सेवा प्रभाग के अधिकारियों व कर्मचारियों की साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की विविध रचनाएं प्रकाशित की जाएंगी। हमारा देश विविधताओं का देश है। यहाँ विभिन्न भाषाएं व बोलियां बोली जाती हैं। देश की जनता के साथ जब उनकी भाषा में सम्प्रेषण किया जाता है तो वे सूचनाओं को भली-भांति समझ पाते हैं। 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' कार्यक्रम इसी का उदाहरण है जिसमें विभिन्न राज्य अपनी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को दूसरे राज्य के साथ साझा करते हैं।

मैं इस अवसर पर सार्वजनिक सेवा ब्रॉडकास्टर के रूप में संगठन को दिए गए जनादेश को पूरा करने के लिए समाचार सेवा प्रभाग: आकाशवाणी नई दिल्ली के कर्मचारियों और अधिकारियों द्वारा किए गए प्रयासों की सराहना करता हूँ और हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं।

4.6.2020
(अमित खरे)

सूचना का अधिकार

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

शशि शेखर वेम्पटि
मुख्य कार्यकारी अधिकारी

Shashi Shekhar Vempati
Chief Executive Officer

प्रसार भारती | PRASAR BHARATI

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि समाचार सेवा प्रभाग हिंदी गृह पत्रिका 'आकाशवाणी समाचार भारती' का नौवां अंक प्रकाशित करने जा रहा है। राजभाषा हिंदी के उत्तरोत्तर विकास में समाचार सेवा प्रभाग की महती भूमिका रही है। मैं आशा करता हूं कि साहित्यिक रचनाओं के साथ अन्य विषयों की रचनाओं को भी पत्रिका में उचित स्थान मिलेगा ताकि अधिकारियों / कार्मिकों को अन्य विषयों पर अद्यतन सूचना प्राप्त हो सके।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

शशि शेखर

(शशि शेखर वेम्पटि)

ईरा जोशी
Ira Joshi

प्रधान महानिदेशक
Principal Director General
समाचार सेवा प्रभाग: आकाशवाणी
News Services Division: All India Radio

संदेश

'आकाशवाणी समाचार भारती' का यह नौवां अंक है। समाचार सेवा प्रभाग अपने कार्यक्रमों के माध्यम से राजभाषा हिंदी का प्रसार-प्रसार करता आ रहा है। गृह पत्रिका ''आकाशवाणी समाचार भारती'' भी इसी दिशा में एक और प्रयास है। समाचार सेवा प्रभाग अपने हिंदी व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं/बोलियों के समाचारों के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है।

मैं आशा करती हूं कि इस पत्रिका के माध्यम से प्रभाग हिंदी के उत्तरोत्तर विकास में अपना योगदान प्रदान करते हुए अधिकारियों/कार्मिकों को सृजनशीलता का अवसर प्रदान करेगा।

पत्रिका के सतत प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(ईरा जोशी)

प्रसार भारती
Prasar Bharati
भारत का लोक सेवा प्रसारक
India's Public Service Broadcaster

इस अंक में

क्र.सं.	रचना	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	भारतीय संविधान पर डॉ. अम्बेडकर का भाषण		8
2.	अम्बेडकर मेमोरियल लेक्चर 21 मार्च, 2016 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के भाषण से उद्धृत कुछ अंश		15
3.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर जीवनः तिथि–क्रम		17
4.	संविधान की कहानी	डॉ. अतुल कुमार तिवारी	21
5.	महिला सशक्तिकरण में डॉक्टर अम्बेडकर की भूमिका	हरी लाल	24
6.	ग्राम स्वराज, संविधान, गांधी और अम्बेडकर	उमेश चतुर्वेदी	27
7.	विकास की नींव रखने वाले महामानवः भारत रत्न 'डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर'	हर्षवर्धन दीक्षित	30
8.	डॉक्टर बाबा साहब अम्बेडकर का पत्रकारिता में योगदान	सुनील डबीर	31
9.	बहुमुखी प्रतिभा के धनीः भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर	ललिता जोशी	35
10.	भारतीय संविधान और डॉ. भीमराव अम्बेडकर	हरि प्रकाश सिंघल	37
11.	डॉ. अम्बेडकर जी के धार्मिक विचार		39
12.	संविधान निर्माण में अग्रिम भूमिका		42
13.	भारतीय संविधान और डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर	फैज़ानुल हक	44

क्र.सं.	रचना	लेखक	पृष्ठ संख्या
14.	एक भारत श्रेष्ठ भारत	समीर वर्मा	46
15.	विषम परिस्थितियों में खिला कमल–अम्बेडकर	लवलीन निगम	48
16.	'नए भारत' के निर्माण के लिए जापान से बहुत कुछ सीख सकते हैं हम	संजीव शर्मा	50
17.	एक छत के नीचे पूर्वोत्तर दर्शन मेघालय का डॉन बास्को म्यूजियम	समीर वर्मा	58
18.	कण्व ऋषि आश्रम	ललिता जोशी	60
19.	बृहत्कथा–गुणाड्य का एक अज़ीम शाहकार	रविन्द्र 'रवि'	62
20.	बाबा साहब	हरि प्रकाश सिंघल	66
21.	आदमी और सपने	अनुभव बैरवा	67
22.	आलोक	अनुभव बैरवा	68

आकाशवाणी समाचार भारती

समाचार सेवा प्रभाग, आकाशवाणी की वार्षिक गृह पत्रिका

'नौवां अंक-2020'

सम्पादकीय विवरण

संरक्षक
सुश्री ईरा जोशी

मुख्य संपादक
डॉ. अतुल कुमार तिवारी

संपादक
श्रीमती ललिता जोशी

सहयोग
श्रीमती नरेश कुमारी

मुद्रक एवं सज्जा
वेद एन्टरप्राईजेज
2316, काली मस्जिद,
सीताराम बाजार, दिल्ली-110 006
मो. 9013376970

निः शुल्क
आंतरिक वितरण हेतु

सम्पादकीय

'आकाशवाणी समाचार भारती' का नौंवा अंक आपके समक्ष है। इसमें प्रकाशित लेख, कहानी और कविता प्रभाग के कर्मियों की सृजनशीलता की कल्पना की उड़ान को मूर्त रूप देते हैं। इनकी रचना धर्मिता आपको चिंतन, मनन के लिए अपनी ओर आकृष्ट करेंगी और आपका मनोरंजन भी।

प्रभाग का यह अंक संविधान निर्माता बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर और भारतीय संविधान को समर्पित है। बाबा साहब का सम्पूर्ण जीवन मानव मूल्यों, समाज के वंचित वर्गों और महिलाओं को समानता प्रदान करने के लिए समर्पित रहा। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व भारतीय संविधान में भी प्रतिबिम्बित होता है। उनका स्वप्न था कि समाज के किसी भी वर्ग का किसी तरह से शोषण न हो। भारतीय संविधान को अंतिम प्रारूप देने में डॉ. अम्बेडकर को 11 माह और 18 दिन का समय लगा। 26 नवम्बर, 1949 को संविधानसभा ने संविधान को स्वीकार किया तथा 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू कर दिया गया। भारतीय संविधान विश्व का सबसे लम्बा एवं लिखित संविधान है। संविधान में प्रशासन के अधिकार, कर्तव्य और नागरिकों के अधिकारों की वृहद व्याख्या की गई है।

'आकाशवाणी समाचार भारती' का यह अंक भारतीय संविधान निर्माता बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को सादर समर्पित है।

प्रकाशित रचनाओं में विचारों/तथ्यों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

भारतीय संविधान पर डॉ. अम्बेडकर का भाषण

महोदय, संविधान सभा के कार्य पर नजर डालते हुए 9 दिसंबर,1946 को हुई उसकी पहली बैठक के बाद अब दो वर्ष, ग्यारह महीने और सत्रह दिन हो जाएंगे। इस अवधि के दौरान संविधान सभा की कुल मिलाकर 11 बैठकें हुई हैं। इन 11 सत्रों में से (छह) उद्देश्य प्रस्ताव पास करने तथा मूलभूत अधिकारों पर, संघीय संविधान पर, संघ की शक्तियों पर, राज्यों के संविधान पर, अल्पसंख्यकों पर, अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों पर बनी समितियों की रिपोर्टों पर विचार करने में व्यतीत हुए। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्र प्रारूप संविधान पर विचार करने के लिए उपयोग किए गए। संविधान सभा के इन 11 सत्रों में 165 दिन कार्य हुआ। इनमें से 114 दिन प्रारूप संविधान के विचारार्थ लगाए गए।

प्रारूप समिति की बात करें तो वह 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा द्वारा चुनी गई थी। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई थी। 30 अगस्त से 141 दिनों तक वह प्रारूप संविधान तैयार करने में जुटी रही। प्रारूप समिति द्वारा आधार रूप में इस्तेमाल किए जाने के लिए संवैधानिक सलाहकार द्वारा बनाए गए प्रारूप संविधान में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। प्रारूप समिति द्वारा संविधान सभा को पेश किए गए पहले प्रारूप संविधान में 315 अनुच्छेद और आठ अनुसूचियां थीं। उस पर विचार किए जाने की अवधि के अंत तक प्रारूप संविधान में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई थी। अपने अंतिम स्वरूप में प्रारूप संविधान में 395 अनुच्छेद और आठ अनुसूचियां हैं। प्रारूप संविधान में कुल मिलाकर लगभग 7,635 संशोधन प्रस्तावित किए गए थे। इनमें से कुल मिलाकर 2,473 संशोधन वास्तव में सदन के विचारार्थ प्रस्तुत किए गए।

मैं इन तथ्यों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि एक समय यह कहा जा रहा था कि अपना काम पूरा करने के लिए सभा ने बहुत लंबा समय लिया है और यह कि वह आराम से कार्य करते हुए सार्वजनिक धन का अपव्यय कर रही है। उसकी तुलना नीरो से की जा रही थी, जो रोम के जलने के समय वंशी बजा रहा था। क्या इस शिकायत का कोई औचित्य है? जरा देखें कि अन्य देशों की संविधान सभाओं ने, जिन्हें उनका संविधान बनाने के लिए नियुक्त किया गया था, कितना समय लिया।

कुछ उदाहरण लें तो अमेरिकन कन्वेंशन ने 25 मई, 1787 को पहली बैठक की और अपना कार्य 17 सितंबर, 1787 अर्थात चार महीनों के भीतर पूरा कर लिया। कनाडा की संविधान सभा की पहली बैठक 10 अक्टूबर, 1864 को हुई और दो वर्ष पांच महीने का समय लेकर मार्च 1867 में संविधान कानून बनकर तैयार हो गया। ऑस्ट्रेलिया की संविधान सभा मार्च 1891 में बैठी और नौ वर्ष लगाने के बाद नौ जुलाई, 1900 को संविधान कानून बन गया। दक्षिण अफ्रीका की सभा की बैठक अक्टूबर 1908 में हुई और एक वर्ष के श्रम के बाद 20 सितंबर, 1909 को संविधान कानून बन गया।

यह सच है कि हमने अमेरिकन या दक्षिण अफ्रीकी सभाओं की तुलना में अधिक समय लिया। परंतु हमने कनाडियन सभा से अधिक समय नहीं लिया और ऑस्ट्रेलियन सभा से तो बहुत ही कम। संविधान–निर्माण में समयावधियों की तुलना करते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। एक तो यह कि अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के संविधान हमारे संविधान के मुकाबले बहुत छोटे आकार के हैं। जैसा मैंने बताया, हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद हैं, जबकि अमेरिकी संविधान में केवल 7 अनुच्छेद हैं, जिनमें से पहले चार सब मिलकर 21 धाराओं में विभाजित हैं। कनाडा के संविधान में 147, आस्ट्रेलियाई में 128 और दक्षिण अफ्रीकी में 153 धाराएं हैं।

याद रखने लायक दूसरी बात यह है कि अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के संविधान निर्माताओं को संशोधनों की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। वे जिस रूप में प्रस्तुत किए गए, वैसे ही पास हो गए। इसकी तुलना में इस संविधान सभा को

2,473 संशोधनों का निपटारा करना पड़ा। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विलंब के आरोप मुझे बिलकुल निराधार लगते हैं और इतने दुर्गम कार्य को इतने कम समय में पूरा करने के लिए यह सभा स्वयं को बधाई तक दे सकती है।

प्रारूप समिति द्वारा किए गए कार्य की गुणवत्ता की बात करें तो नजीरुद्दीन अहमद ने उसकी निंदा करने को अपना फर्ज समझा। उनकी राय में प्रारूप समिति द्वारा किया गया कार्य न तो तारीफ के काबिल है, बल्कि निश्चित रूप से औसत से कम दर्जे का है। प्रारूप समिति के कार्य पर सभी को अपनी राय रखने का अधिकार है और अपनी राय व्यक्त करने के लिए नजीरुद्दीन अहमद का ख्याल है कि प्रारूप समिति के किसी भी सदस्य के मुकाबले उनमें ज्यादा प्रतिभा है। प्रारूप समिति उनके इस दावे को चुनौती नहीं देना चाहती।

इस बात का दूसरा पहलू यह है कि यदि सभा ने उन्हें इस समिति में नियुक्त करने के काबिल समझा होता तो समिति अपने बीच उनकी उपस्थिति का स्वागत करती। यदि संविधान–निर्माण में उनकी कोई भूमिका नहीं थी तो निश्चित रूप से इसमें प्रारूप समिति का कोई दोष नहीं है। प्रारूप समिति के प्रति अपनी नफरत जताने के लिए नजीरुद्दीन ने उसे एक नया नाम दिया। वे उसे 'ड्रिलिंग कमेटी' कहते हैं। निस्संदेह नजीरुद्दीन अपने व्यंग्य पर खुश होंगे। परंतु यह साफ है कि वह नहीं जानते कि बिना कुशलता के बहने और कुशलता के साथ बहने में अंतर है।

यदि प्रारूप समिति ड्रिल कर रही थी तो ऐसा कभी नहीं था कि स्थिति पर उसकी पकड़ मजबूत न हो। वह केवल यह सोचकर पानी में कांटा नहीं डाल रही थी कि संयोग से मछली फंस जाए। उसे जाने–पहचाने पानी में लक्षित मछली की तलाश थी। किसी बेहतर चीज की तलाश में रहना प्रवाह में बहना नहीं है।

यद्यपि नजीरुद्दीन ऐसा कहकर प्रारूप समिति की तारीफ करना नहीं चाहते थे, मैं इसे तारीफ के रूप में ही लेता हूं। समिति को जो संशोधन दोषपूर्ण लगे, उन्हें वापस लेने और उनके स्थान पर बेहतर संशोधन प्रस्तावित करने की ईमानदारी और साहस न दिखाया होता तो वह अपना कर्तव्य–पालन न करने और मिथ्याभिमान की दोषी होती। यदि यह एक गलती थी तो मुझे खुशी है कि प्रारूप समिति ने ऐसी गलतियों को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया और उन्हें ठीक करने के लिए कदम उठाए।

यह देखकर मुझे प्रसन्नता होती है कि प्रारूप समिति द्वारा किए गए कार्य की प्रशंसा करने में एक अकेले सदस्य को छोड़कर संविधान सभा के सभी सदस्य एकमत थे। मुझे विश्वास है कि अपने श्रम की इतनी सहज और उदार प्रशंसा से प्रारूप समिति को प्रसन्नता होगी। सभा के सदस्यों और प्रारूप समिति के मेरे सहयोगियों द्वारा मुक्त कंठ से मेरी जो प्रशंसा की गई है, उससे मैं इतना अभिभूत हो गया हूं कि अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। संविधान सभा में आने के पीछे मेरा उद्देश्य अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करने से अधिक कुछ नहीं था।

मुझे दूर तक यह कल्पना नहीं थी कि मुझे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा जाएगा। इसीलिए, उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ, जब सभा ने मुझे प्रारूप समिति के लिए चुन लिया। जब प्रारूप समिति ने मुझे उसका अध्यक्ष निर्वाचित किया तो मेरे लिए यह आश्चर्य से भी परे था। प्रारूप समिति में मेरे मित्र सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर जैसे मुझसे भी बड़े, श्रेष्ठतर और अधिक कुशल व्यक्ति थे। मुझ पर इतना विश्वास रखने, मुझे अपना माध्यम बनाने एवं देश की सेवा का अवसर देने के लिए मैं संविधान सभा और प्रारूप समिति का अनुगृहीत हूं।

(करतल–ध्वनि)

जो श्रेय मुझे दिया गया है, वास्तव में उसका हकदार मैं नहीं हूं। वह श्रेय संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी.एन. राव को जाता है, जिन्होंने प्रारूप समिति के विचारार्थ संविधान का एक सच्चा प्रारूप तैयार किया। श्रेय का कुछ भाग प्रारूप समिति के सदस्यों को भी जाना चाहिए जिन्होंने, जैसे मैंने कहा, 141 बैठकों में भाग लिया और नए फॉर्मूले बनाने में जिनकी दक्षता तथा विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकार करके उन्हें समाहित करने की सामर्थ्य के बिना संविधान–निर्माण का कार्य सफलता की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकता था।

श्रेय का एक बड़ा भाग संविधान के मुख्य ड्राफ्ट्समैन एस.एन. मुखर्जी को जाना चाहिए। जटिलतम प्रस्तावों को सरलतम व स्पष्टतम कानूनी भाषा में रखने की उनकी सामर्थ्य और उनकी कड़ी मेहनत का जोड़ मिलना मुश्किल है। वह सभा के लिए एक संपदा रहे हैं। उनकी सहायता के बिना संविधान को अंतिम रूप देने में सभा को कई वर्ष और लग जाते। मुझे मुखर्जी के अधीन कार्यरत कर्मचारियों का उल्लेख करना नहीं भूलना चाहिए, क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्होंने कितनी बड़ी मेहनत की है और कितना समय, कभी–कभी तो आधी रात से भी अधिक समय दिया है। मैं उन सभी के प्रयासों और सहयोग के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहता हूं।

यदि यह संविधान सभा भानुमति का कुनबा होती, एक बिना सीमेंट वाला कच्चा फुटपाथ, जिसमें एक काला पत्थर यहां और एक सफेद पत्थर वहां लगा होता और उसमें प्रत्येक सदस्य या गुट अपनी मनमानी करता तो प्रारूप समिति का कार्य बहुत कठिन हो जाता। तब अव्यवस्था के सिवाय कुछ न होता। अव्यवस्था की संभावना सभा के भीतर कांग्रेस पार्टी की उपस्थिति से शून्य हो गई, जिसने उसकी कार्रवाइयों में व्यवस्था और अनुशासन पैदा कर दिया। यह कांग्रेस पार्टी के अनुशासन का ही परिणाम था कि प्रारूप समिति के प्रत्येक अनुच्छेद और संशोधन की नियति के प्रति आश्वस्त होकर उसे सभा में प्रस्तुत कर सकी। इसीलिए सभा में प्रारूप संविधान के सुगमता से पारित हो जाने का सारा श्रेय कांग्रेस पार्टी को जाता है।

यदि इस संविधान सभा के सभी सदस्य पार्टी अनुशासन के आगे घुटने टेक देते तो उसकी कार्रवाइयां बहुत फीकी होतीं। अपनी संपूर्ण कठोरता में पार्टी अनुशासन सभा को जीहुजूरियों के जमावड़े में बदल देता। सौभाग्यवश, उसमें विद्रोही थे। वे थे कामत, डॉ. पी.एस. देशमुख, सिधवा, प्रो. सक्सेना और पं. ठाकुरदास भार्गव। इनके साथ मुझे प्रो. के.टी. शाह और पं. ह्रदयनाथ कुंजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। उन्होंने जो बिंदु उठाए, उनमें से अधिकांश विचारात्मक थे।

यह बात कि मैं उनके सुझावों को मानने के लिए तैयार नहीं था, उनके सुझावों की महत्ता को कम नहीं करती और न सभा की कार्रवाइयों को जानदार बनाने में उनके योगदान को कम आंकती है। मैं उनका कृतज्ञ हूं। उनके बिना मुझे संविधान के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करने का अवसर न मिला होता, जो संविधान को यंत्रवत पारित करा लेने से अधिक महत्वपूर्ण था।

और अंत में, राष्ट्रपति महोदय, जिस तरह आपने सभा की कार्रवाई का संचालन किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। आपने जो सौजन्य और समझ सभा के सदस्यों के प्रति दर्शाई है वे उन लोगों द्वारा कभी भुलाई नहीं जा सकती, जिन्होंने इस सभा की कार्रवाइयों में भाग लिया है। ऐसे अवसर आए थे, जब प्रारूप समिति के संशोधन ऐसे आधारों पर अस्वीकृत किए जाने थे, जो विशुद्ध रूप से तकनीकी प्रकृति के थे। मेरे लिए वे क्षण बहुत आकुलता से भरे थे, इसलिए मैं विशेष रूप से आपका आभारी हूं कि आपने संविधान–निर्माण के कार्य में यांत्रिक विधिवादी रवैया अपनाने की अनुमति नहीं दी।

संविधान का जितना बचाव किया जा सकता था, वह मेरे मित्रों सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर और टी. टी. कृष्णमाचारी द्वारा किया जा चुका है, इसलिए मैं संविधान की खूबियों पर बात नहीं करूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह बुरा साबित हो सकता है, यदि उसका अनुसरण करने वाले लोग बुरे हों।

एक संविधान चाहे जितना बुरा हो, वह अच्छा साबित हो सकता है, यदि उसका पालन करने वाले लोग अच्छे हों। संविधान की प्रभावशीलता पूरी तरह उसकी प्रकृति पर निर्भर नहीं है। संविधान केवल राज्य के अंगों – जैसे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका – का प्रावधान कर सकता है। राज्य के इन अंगों का प्रचालन जिन तत्वों पर निर्भर है, वे हैं जनता और उनकी आकांक्षाओं तथा राजनीति को संतुष्ट करने के उपकरण के रूप में उनके द्वारा गठित राजनीतिक दल।

यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उनके दल किस तरह का आचरण करेंगे? अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्या वे संवैधानिक तरीके इस्तेमाल करेंगे या उनके लिए क्रांतिकारी तरीके अपनाएंगे? यदि वे क्रांतिकारी तरीके अपनाते हैं तो संविधान चाहे जितना अच्छा हो, यह बात कहने के लिए किसी ज्योतिषी की आवश्यकता नहीं कि वह असफल रहेगा। इसलिए जनता और उनके राजनीतिक दलों की संभावित भूमिका को

ध्यान में रखे बिना संविधान पर कोई राय व्यक्त करना उपयोगी नहीं है।

संविधान की निंदा मुख्य रूप से दो दलों द्वारा की जा रही है – कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी। वे संविधान की निंदा क्यों करते हैं? क्या इसलिए कि वह वास्तव में एक बुरा संविधान है? मैं कहूंगा, नहीं। कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धांत पर आधारित संविधान चाहती है। वे संविधान की निंदा इसलिए करते हैं कि वह संसदीय लोकतंत्र पर आधारित है। सोशलिस्ट दो बातें चाहते हैं। पहली तो वे चाहते हैं कि संविधान यह व्यवस्था करे कि जब वे सत्ता में आएं तो उन्हें इस बात की आजादी हो कि वे मुआवजे का भुगतान किए बिना समस्त निजी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण या सामाजिकरण कर सकें। सोशलिस्ट जो दूसरी चीज चाहते हैं, वह यह है कि संविधान में दिए गए मूलभत अधिकार असीमित होने चाहिए, ताकि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आने में असफल रहती है तो उन्हें इस बात की आजादी हो कि वे न केवल राज्य की निंदा कर सकें, बल्कि उसे उखाड़ फेंकें।

मुख्य रूप से ये ही वे आधार हैं, जिन पर संविधान की निंदा की जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि संसदीय प्रजातंत्र राजनीतिक प्रजातंत्र का एकमात्र आदर्श स्वरूप है। मैं यह नहीं कहता कि मुआवजे का भुगतान किए बिना निजी संपत्ति अधिगृहीत न करने का सिद्धांत इतना पवित्र है कि उसमें कोई बदलाव नहीं किया जा सकता। मैं यह भी नहीं कहता कि मौलिक अधिकार कभी असीमित नहीं हो सकते और उन पर लगाई गई सीमाएं कभी हटाई नहीं जा सकतीं। मैं जो कहता हूं, वह यह है कि संविधान में अंतर्निहित सिद्धांत वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं। यदि आप इसे अत्युक्ति समझें तो मैं कहूंगा कि वे संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। उन्हें संविधान में शामिल करने के लिए प्रारूप समिति को क्यों दोष दिया जाए? मैं तो कहता हूं कि संविधान सभा के सदस्यों को भी क्यों दोष दिया जाए? इस संबंध में महान अमेरिकी राजनेता जेफरसन ने बहुत सारगर्भित विचार व्यक्त किए हैं, कोई भी संविधान–निर्माता जिनकी अनदेखी नहीं कर सकते।

एक स्थान पर उन्होंने कहा है –हम प्रत्येक पीढ़ी को एक निश्चित राष्ट्र मान सकते हैं, जिसे बहुमत की मंशा के द्वारा स्वयं को प्रतिबंधित करने का अधिकार है; परंतु जिस तरह उसे किसी अन्य देश के नागरिकों को प्रतिबंधित करने का अधिकार नहीं है, ठीक उसी तरह भावी पीढ़ियों को बांधने का अधिकार भी नहीं है।

एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है – राष्ट्र के उपयोग के लिए जिन संस्थाओं की स्थापना की गई, उन्हें अपने कृत्यों के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए भी उनके संचालन के लिए नियुक्त लोगों के अधिकारों के बारे में भ्रांत धारणाओं के अधीन यह विचार कि उन्हें छेड़ा या बदला नहीं जा सकता, एक निरंकुश राजा द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ एक सराहनीय प्रावधान हो सकता है, परंतु राष्ट्र के लिए वह बिल्कुल बेतुका है। फिर भी हमारे अधिवक्ता और धर्मगुरु यह मानकर इस सिद्धांत को लोगों के गले उतारते हैं कि पिछली पीढ़ियों की समझ हमसे कहीं अच्छी थी। उन्हें वे कानून हम पर थोपने का अधिकार था, जिन्हें हम बदल नहीं सकते थे और उसी प्रकार हम भी ऐसे कानून बनाकर उन्हें भावी पीढ़ियों पर थोप सकते हैं, जिन्हें बदलने का उन्हें भी अधिकार नहीं होगा। सारांश यह कि धरती पर मृत व्यक्तियों का हक है, जीवित व्यक्तियों का नहीं।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि जो कुछ जेफरसन ने कहा, वह केवल सच ही नहीं, परम सत्य है। इस संबंध में कोई संदेह हो ही नहीं सकता। यदि संविधान सभा ने जेफरसन के उस सिद्धांत से भिन्न रुख अपनाया होता तो वह निश्चित रूप से दोष बल्कि निंदा की भागी होती। परंतु मैं पूछता हूं कि क्या उसने सचमुच ऐसा किया है? इससे बिल्कुल विपरीत। कोई केवल संविधान के संशोधन संबंधी प्रावधान की जांच करें। सभा न केवल कनाडा की तरह संविधान संशोधन संबंधी जनता के अधिकार को नकारने के जरिए या आस्ट्रेलिया की तरह संविधान संशोधन को असाधारण शर्तों की पूर्ति के अधीन बनाकर उस पर अंतिमता और अमोघता की मुहर लगाने से बची है, बल्कि उसने संविधान संशोधन की प्रक्रिया को सरलतम बनाने के प्रावधान भी किए हैं।

मैं संविधान के किसी भी आलोचक को यह साबित करने की चुनौती देता हूं कि भारत में आज बनी हुई स्थितियों जैसी स्थितियों में दुनिया की किसी संविधान सभा ने संविधान संशोधन की इतनी सुगम प्रक्रिया के प्रावधान किए हैं! जो लोग संविधान से असंतुष्ट हैं, उन्हें

केवल दो–तिहाई बहुमत भी प्राप्त करना है और वयस्क मताधिकार के आधार पर यदि वे संसद में दो–तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते तो संविधान के प्रति उनके असंतोष को जन–समर्थन प्राप्त है, ऐसा नहीं माना जा सकता।

संवैधानिक महत्व का केवल एक बिंदु ऐसा है, जिस पर मैं बात करना चाहूंगा। इस आधार पर गंभीर शिकायत की गई है कि संविधान में केंद्रीयकरण पर बहुत अधिक बल दिया गया है और राज्यों की भूमिका नगरपालिकाओं से अधिक नहीं रह गई है। यह स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है बल्कि संविधान के अभिप्रायों के प्रति भ्रांत धारणाओं पर आधारित है। जहां तक केंद्र और राज्यों के बीच संबंध का सवाल है, उसके मूल सिद्धांत पर ध्यान देना आवश्यक है। संघवाद का मूल सिद्धांत यह है कि केंद्र और राज्यों के बीच विधायी और कार्यपालक शक्तियों का विभाजन केंद्र द्वारा बनाए गए किसी कानून के द्वारा नहीं बल्कि स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है। संविधान की व्यवस्था इस प्रकार है।

हमारे संविधान के अंतर्गत अपनी विधायी या कार्यपालक शक्तियों के लिए राज्य किसी भी तरह से केंद्र पर निर्भर नहीं है। इस विषय में केंद्र और राज्य समानाधिकारी हैं। यह समस्या कठिन है कि ऐसे संविधान को केंद्रवादी कैसे कहा जा सकता है। यह संभव है कि संविधान किसी अन्य संघीय संविधान के मुकाबले विधायी और कार्यपालक प्राधिकार के उपयोग के विषय में केंद्र के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र निर्धारित करता हो। यह भी संभव है कि अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को दी गई हो, राज्यों को नहीं। परंतु ये व्यवस्थाएं संघवाद का मर्म नहीं है। जैसा मैंने कहा, संघवाद का प्रमुख लक्षण केंद्र और इकाइयों के बीच विधायी और कार्यपालक शक्तियों का संविधान द्वारा किया गया विभाजन है।

यह सिद्धांत हमारे संविधान में सन्निहित है। इस संबंध में कोई भूल नहीं हो सकती। इसलिए, यह कल्पना गलत होगी कि राज्यों को केंद्र के अधीन रखा गया है। केंद्र अपनी ओर से इस विभाजन की सीमा–रेखा को परिवर्तित नहीं कर सकता और न न्यायपालिका ऐसा कर सकती है। क्योंकि, जैसा बहुत सटीक रूप से कहा गया है–

''अदालतें मामूली हेर–फेर कर सकती हैं, प्रतिस्थापित नहीं कर सकतीं। वे पूर्व व्याख्याओं को नए तर्कों का स्वरूप दे सकती हैं, नए दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकती हैं, वे सीमांत मामलों में विभाजक रेखा को थोड़ा खिसका सकती हैं, परंतु ऐसे अवरोध हैं, जिन्हें वे पार नहीं कर सकती, शक्तियों का सुनिश्चित निर्धारण है, जिन्हें वे पुनरावंटित नहीं कर सकतीं। वे वर्तमान शक्तियों का क्षेत्र बढ़ा सकती हैं, परंतु एक प्राधिकारी को स्पष्ट रूप से प्रदान की गई शक्तियों को किसी अन्य प्राधिकारी को हस्तांतरित नहीं कर सकतीं।'' इसलिए, संघवाद को कमजोर बनाने का पहला आरोप स्वीकार्य नहीं है।

दूसरा आरोप यह है कि केंद्र को ऐसी शक्तियां प्रदान की गई हैं, जो राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण करती हैं। यह आरोप स्वीकार किया जाना चाहिए। परंतु केंद्र की शक्तियों को राज्य की शक्तियों से ऊपर रखने वाले प्रावधानों के लिए संविधान की निंदा करने से पहले कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए। पहली यह कि इस तरह की अभिभावी शक्तियां संविधान के सामान्य स्वरूप का अंग नहीं हैं। उनका उपयोग और प्रचालन स्पष्ट रूप से आपातकालीन स्थितियों तक सीमित किया गया है।

ध्यान में रखने योग्य दूसरी बात है– आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए क्या हम केंद्र को अभिभावी शक्तियां देने से बच सकते हैं? जो लोग आपातकालीन स्थितियों में भी केंद्र को ऐसी अभिभावी शक्तियां दिए जाने के पक्ष में नहीं हैं वे इस विषय के मूल में छिपी समस्या से ठीक से अवगत प्रतीत नहीं होते। इस समस्या का सुविख्यात पत्रिका; 'द राउंड टेबल' के दिसंबर 1935 के अंक में एक लेखक द्वारा इतनी स्पष्टता से बचाव किया गया है कि मैं उसमें से यह उद्धरण देने के लिए क्षमाप्रार्थी नहीं हूं। लेखक कहते हैं– ''राजनीतिक प्रणालियां इस प्रश्न पर अवलंबित अधिकारों और कर्तव्यों का एक मिश्रण हैं कि एक नागरिक किस व्यक्ति या किस प्राधिकारी के प्रति निष्ठावान रहे।

सामान्य क्रियाकलापों में यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि सुचारु रूप से अपना कार्य करता है और एक व्यक्ति अमुक मामलों में एक प्राधिकारी और अन्य मामलों में किसी अन्य प्राधिकारी के आदेश का पालन करता हुआ अपने काम निपटाता है। परंतु एक आपातकालीन स्थिति में प्रतिद्वंद्वी दावे पेश किए जा सकते हैं और ऐसी

स्थिति में यह स्पष्ट है कि अंतिम प्राधिकारी के प्रति निष्ठा अविभाज्य है। निष्ठा का मुद्दा अंततः संविधियों की न्यायिक व्याख्याओं से निर्णीत नहीं किया जा सकता। कानून को तथ्यों से समीचीन होना चाहिए, अन्यथा वह प्रभावी नहीं होगा। यदि सारी प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं को एक तरफ कर दिया जाए तो निरा प्रश्न यह होगा कि कौन सा प्राधिकारी एक नागरिक की अवशिष्ट निष्ठा का हकदार है। वह केंद्र है या संविधान राज्य?''

इस समस्या का समाधान इस सवाल, जो कि समस्या का मर्म है, के उत्तर पर निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकांश लोगों की राय में एक आपातकालीन स्थिति में नागरिक को अवशिष्ट निष्ठा अंगभूत राज्यों के बजाय केंद्र को निर्देशित होनी चाहिए, क्योंकि वह केंद्र ही है, जो सामूहिक उद्देश्य और संपूर्ण देश के सामान्य हितों के लिए कार्य कर सकता है। एक आपातकालीन स्थिति में केंद्र की अभिभावी शक्तियां प्रदान करने का यही औचित्य है। वैसे भी, इन आपातकालीन शक्तियों से अंगभूत राज्यों पर कौन सा दायित्व थोपा गया है कि एक आपातकालीन स्थिति में उन्हें अपने स्थानीय हितों के साथ–साथ संपूर्ण राष्ट्र के हितों और मतों का भी ध्यान रखना चाहिए– इससे अधिक कुछ नहीं। केवल वही लोग, जो इस समस्या को समझे नहीं हैं, उसके खिलाफ शिकायत कर सकते हैं।

यहां पर मैं अपनी बात समाप्त कर देता, परंतु हमारे देश के भविष्य के बारे में मेरा मन इतना परिपूर्ण है कि मैं महसूस करता हूं, उस पर अपने कुछ विचारों को आपके सामने रखने के लिए इस अवसर का उपयोग करूं। 26 जनवरी, 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा। (करतल ध्वनि) उसकी स्वतंत्रता का भविष्य क्या है? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बनाए रखेगा या उसे फिर खो देगा? मेरे मन में आने वाला यह पहला विचार है। यह बात नहीं है कि भारत कभी एक स्वतंत्र देश नहीं था। विचार बिंदु यह है कि जो स्वतंत्रता उसे उपलब्ध थी, उसे उसने एक बार खो दिया था। क्या वह उसे दूसरी बार खो देगा? यही विचार है जो मुझे भविष्य को लेकर बहुत चिंतित कर देता है। यह तथ्य मुझे और भी व्यथित करता है कि न केवल भारत ने पहले एक बार स्वतंत्रता खोई है, बल्कि अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण ऐसा हुआ है।

सिंध पर हुए मोहम्मद–बिन–कासिम के हमले से राजा दाहिर के सैन्य अधिकारियों ने मुहम्मद–बिन–कासिम के दलालों से रिश्वत लेकर अपने राजा के पक्ष में लड़ने से इनकार कर दिया था। वह जयचंद ही था, जिसने भारत पर हमला करने एवं पृथ्वीराज से लड़ने के लिए मुहम्मद गोरी को आमंत्रित किया था और उसे अपनी व सोलंकी राजाओं को मदद का आश्वासन दिया था। जब शिवाजी हिंदुओं की मुक्ति के लिए लड़ रहे थे, तब कोई मराठा सरदार और राजपूत राजा मुगल शहंशाह की ओर से लड़ रहे थे।

जब ब्रिटिश सिख शासकों को समाप्त करने की कोशिश कर रहे थे तो उनका मुख्य सेनापति गुलाबसिंह चुप बैठा रहा और उसने सिख राज्य को बचाने में उनकी सहायता नहीं की। सन् 1857 में जब भारत के एक बड़े भाग में ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वातंत्र्य युद्ध की घोषणा की गई थी तब सिख इन घटनाओं को मूक दर्शकों की तरह खड़े देखते रहे। क्या इतिहास स्वयं को दोहराएगा? यह वह विचार है, जो मुझे चिंता से भर देता है। इस तथ्य का एहसास होने के बाद यह चिंता और भी गहरी हो जाती है कि जाति व धर्म के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के अतिरिक्त हमारे यहां विभिन्न और विरोधी विचारधाराओं वाले राजनीतिक दल होंगे। क्या भारतीय देश को अपने मताग्रहों से ऊपर रखेंगे या उन्हें देश से ऊपर समझेंगे? मैं नहीं जानता। परंतु यह तय है कि यदि पार्टियां अपने मताग्रहों को देश से ऊपर रखेंगे तो हमारी स्वतंत्रता संकट में पड़ जाएगी और संभवतः वह हमेशा के लिए खो जाए।

हम सबको दृढ़ संकल्प के साथ इस संभावना से बचना है। हमें अपने खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी है। (करतल ध्वनि) 26 जनवरी, 1950 को भारत इस अर्थ में एक प्रजातांत्रिक देश बन जाएगा कि उस दिन से भारत में जनता की जनता द्वारा और जनता के लिए बनी एक सरकार होगी। यही विचार मेरे मन में आता है। उसके प्रजातांत्रिक संविधान का क्या होगा? क्या वह उसे बनाए रखेगा या उसे फिर से खो देगा? मेरे मन में आने वाला यह दूसरा विचार है और यह भी पहले विचार जितना ही चिंताजनक है।

यह बात नहीं है कि भारत ने कभी प्रजातंत्र को जाना ही नहीं। एक समय था, जब भारत गणतंत्रों से

भरा हुआ था और जहां राजसत्ताएं थीं वहां भी या तो वे निर्वाचित थीं या सीमित। वे कभी भी निरंकुश नहीं थीं। यह बात नहीं है कि भारत संसदों या संसदीय क्रियाविधि से परिचित नहीं था। बौद्ध भिक्षु संघों के अध्ययन से यह पता चलता है कि न केवल संसदें– क्योंकि संघ संसद के सिवाय कुछ नहीं थे– थीं बल्कि संघ संसदीय प्रक्रिया के उन सब नियमों को जानते और उनका पालन करते थे, जो आधुनिक युग में सर्वविदित है।

सदस्यों के बैठने की व्यवस्था, प्रस्ताव रखने, कोरम व्हिप, मतों की गिनती, मतपत्रों द्वारा वोटिंग, निंदा प्रस्ताव, नियमितीकरण आदि संबंधी नियम चलन में थे। यद्यपि संसदीय प्रक्रिया संबंधी ये नियम बुद्ध ने संघों की बैठकों पर लागू किए थे, उन्होंने इन नियमों को उनके समय में चल रही राजनीतिक सभाओं से प्राप्त किया होगा। भारत ने यह प्रजातांत्रिक प्रणाली खो दी। क्या वह दूसरी बार उसे खोएगा? मैं नहीं जानता, परंतु भारत जैसे देश में यह बहुत संभव है– जहां लंबे समय से उसका उपयोग न किए जाने को उसे एक बिलकुल नई चीज समझा जा सकता है– कि तानाशाही प्रजातंत्र का स्थान ले ले। इस नवजात प्रजातंत्र के लिए यह बिलकुल संभव है कि वह आवरण प्रजातंत्र का बनाए रखे, परंतु वास्तव में वह तानाशाही हो।

चुनाव में महाविजय की स्थिति में दूसरी संभावना के यथार्थ बनने का खतरा अधिक है। प्रजातंत्र को केवल बाह्य स्वरूप में ही नहीं बल्कि वास्तव में बनाए रखने के लिए हमें क्या करना चाहिए? मेरी समझ से, हमें पहला काम यह करना चाहिए कि अपने सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निष्ठापूर्वक संवैधानिक उपायों का ही सहारा लेना चाहिए। इसका अर्थ है, हमें क्रांति का खूनी रास्ता छोड़ना होगा। इसका अर्थ है कि हमें सविनय अवज्ञा आंदोलन, असहयोग और सत्याग्रह के तरीके छोड़ने होंगे। जब आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का कोई संवैधानिक उपाय न बचा हो, तब असंवैधानिक उपाय उचित जान पड़ते हैं। परंतु जहां संवैधानिक उपाय खुले हों, वहां इन असंवैधानिक उपायों का कोई औचित्य नहीं है।

ये तरीके अराजकता के व्याकरण के सिवाय कुछ भी नहीं हैं और जितनी जल्दी इन्हें छोड़ दिया जाए, हमारे लिए उतना ही अच्छा है। दूसरी चीज जो हमें करनी चाहिए, वह है जॉन स्टुअर्ट मिल की उस चेतावनी को ध्यान में रखना, जो उन्होंने उन लोगों को दी है, जिन्हें प्रजातंत्र को बनाए रखने में दिलचस्पी है, अर्थात ''अपनी स्वतंत्रता को एक महानायक के चरणों में भी समर्पित न करें या उस पर विश्वास करके उसे इतनी शक्तियां प्रदान न कर दें कि वह संस्थाओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाए।''

उन महान व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने में कुछ गलत नहीं है, जिन्होंने जीवनपर्यंत देश की सेवा की हो। परंतु कृतज्ञता की भी कुछ सीमाएं हैं। जैसा कि आयरिश देशभक्त डेनियल ओ कॉमेल ने खूब कहा है, ''कोई पुरुष अपने सम्मान की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता, कोई महिला अपने सतीत्व की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकती और कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता।'' यह सावधानी किसी अन्य देश के मुकाबले भारत के मामले में अधिक आवश्यक है, क्योंकि भारत में भक्ति या नायक–पूजा उसकी राजनीति में जो भूमिका अदा करती है, उस भूमिका के परिणाम के मामले में दुनिया का कोई देश भारत की बराबरी नहीं कर सकता। धर्म के क्षेत्र में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकता है, परंतु राजनीति में भक्ति या नायक पूजा पतन और अंततः तानाशाही का सीधा रास्ता है।

तीसरी चीज जो हमें करनी चाहिए, वह है कि मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र पर संतोष न करना। हमें हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक उसे सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का अर्थ क्या है? वह एक ऐसी जीवन–पद्धति है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करती है।

(संविधान सभा में 26 नवंबर 1949 को संविधान को स्वीकृत करने के अवसर पर दिया गया भाषण)

अम्बेडकर मेमोरियल लेक्चर 21 मार्च, 2016 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के भाषण से उद्धृत कुछ अंश

उनको 'विश्व मानव' के रूप में हमें देखना चाहिए। दुनिया जिस रूप से मार्टिन लूथर किंग को देखती है, हम बाबा अम्बेडकर साहब को उससे जरा भी कम नहीं देख सकते। अगर विश्व के दबे–कुचले लोगों की आवाज़ मार्टिन लूथर किंग बन सकते हैं, तो आज विश्व के दबे कुचले लोगों की आवाज़ बाबा साहब अम्बेडकर बन सकते हैं। और इसलिए मानवता में जिस–जिस का विश्वास है उन सबके लिए ये बहुत आवश्यक है कि बाबा साहब मानवीय मूल्यों के रखवाले थे।

आप देख लीजिए power generation, electricity आज हम देख रहे हैं कि हिन्दुस्तान में ऊर्जा की दिशा में जो काम हुआ है, उसकी अगर कोई structured व्यवस्था बनी तो बाबा साहब के द्वारा बनी थी और उसी का नतीजा था कि Electric Board वगैरह electricity generation के लिए अलग व्यवस्थाएं खड़ी हुईं जो आगे चल करके देश में विस्तार होता गया और भारत में ऊर्जा की दिशा में self - sufficient बनने के लिए भारत में घर–घर ऊर्जा पहुंचाने की दिशा में उस सोच का परिणाम था, कि उन्होंने एक structured व्यवस्था देश को दी।

बाबा साहब हमें क्या संदेश देकर गए और मैं मानता हूं जो बीमारी का सही उपचार अगर किसी ने ढूंढा है, तो बाबा साहब ने ढूंढा है। बीमारियों का पता बहुतों को होता है, बीमारी से मुक्ति के लिए छोटे–मोटे प्रयास करने वाले भी कुछ लोग होते हैं लेकिन एक स्थाई समाधान, अगर किसी ने दिया तो बाबा साहब ने दिया, वो क्या? उन्होंने समाज को एक ही बात कही कि भाई शिक्षित बनो, शिक्षित बनो, ये सारी समस्याओं का समाधान शिक्षा में है और एक बार अगर आप शिक्षित होंगें, तो दुनिया के सामने आप आंख से आंख मिला करके बात कर पाओगे, कोई आपको नीचा नहीं देख सकता, कोई आपको अछूत नहीं कह सकता।

राज निष्ठा की प्रेरणा से बाबा साहब अम्बेडकर ने कभी कोई काम नहीं किया। राष्ट्र निष्ठा और समाज निष्ठा से किया और इसलिए हमने भी हमारी हर सोच हमारे हर निर्णय को इस तराजू से तौलने का बाबा अम्बेडकर साहब ने हमें रास्ता दिखाया है कि राष्ट्र निष्ठा के तराजू से तोला जाए, समाज निष्ठा के तराजू से तोला जाए और तब जा करके वो हमारा निर्णय, हमारी दिशा, सही सिद्ध होगी।

बाबा साहब को समझने के लिए समाज के प्रति संवेदना चाहिए और उस महापुरुष के प्रति भक्ति चाहिए, तब जा करके संभव होगा और इसलिए बाबा साहब अम्बेडकर ने अपने आर्थिक चिंतन में एक बात साफ कही थी, वो इस बात को लगातार कहते थे कि भारत का औद्योगिकरण बहुत अनिवार्य है। Industrialisation, उस समय से वो सोचते थे, एक तरफ labour reforms करते थे labour के हक के लिए लड़ाई लड़ते थे, लेकिन राष्ट्र के लिए औद्योगिकरण की वकालत करते थे। देखिये कितना बढ़िया combination है।

बाबा साहब मानवता के पक्षकार थे। अमानवता की हर चीज को वो नकारते थे। उसका परिमार्जन का प्रयास करते थे और हर चीज संवैधानिक तरीके से करते थे। लोकतांत्रिक मर्यादाओं के साथ करते थे। बाबा साहब के साथ क्या–क्या अन्याय किया, किस–किसने अन्याय किया, ये हम सब भली–भांति जानते हैं। हमारा संकल्प ये ही रहे दलित हो, पीड़ित हो, शोषित हो, जो गण वंचित हो, गरीब हो, आदिवासी हो, गांव में रहने वाला हो, झुग्गी–झोंपड़ी में जीने वाला हो, शिक्षा के अभाव में तरसने वाला हो, इन सबके लिए अगर कुछ काम करना है तो बाबा साहब अम्बेडकर हमारे लिए सदा–सर्वदा एक प्रेरणा हैं और वो ही प्ररेणा हमें काम करने के लिए ताकत देती है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर जीवनः तिथि-क्रम

- 14 अप्रैल 1891 महू में जन्म।
- 1907 में मैट्रिक तथा 1912 में बी.ए.।
- जुलाई 1913 में उच्च शिक्षा हेतु अमरीका गये।
- 1915 में 'प्राचीन भारत का व्यापार' इस शोध–प्रबंध' पर एम.ए. उपाधि।
- 1916 में डॉ. गोल्डन बेझर द्वारा आयोजित संगोष्ठी में आलेख वाचन।
- 21 अगस्त 1917 मुंबई वापस।
- 31 जनवरी 1920 'मूक नायक' पाक्षिक का संपादन।
- मई 1920 नागपुर में 'बहिष्कृत समाज परिषद' की स्थापना।
- जून 1921 एम.एस.सी. उपाधि प्राप्त।
- 1922 बैरिस्टर की उपाधि।
- 1923 में पी.एच.डी. और डी.एस.सी. उपाधियां।
- दिसम्बर 1923 'दि प्रॉब्लेम ऑफ रूपी' प्रबंध प्रकाशित।
- जुलाई 1923 बैरिस्टरी की शुरुआत।
- मार्च 1924 'अस्पृश्यता समाज परिषद' की स्थापना।
- जुलाई 1924 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना।
- दिसम्बर 1925 से 1928 बाटलीबॉय अकाऊंटसी ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट में शिक्षक।
- 20 मार्च 1927 महाड के चवदार तालाब सत्याग्रह का निर्णय।
- 3 अप्रैल 1927 'बहिष्कृत भारत' पाक्षिक का आरम्भ।
- 25 दिसम्बर 1927 महाड सत्याग्रह।
- जून 1928 शासकीय विधि महाविद्यालय में प्राध्यापक।
- अगस्त 1928 मुंबई प्रांतिक समिति पर चुनाव।
- अक्तूबर 1928 मुंबई प्रांतिक समिति की ओर से 'साइमन कमीशन' के सम्मुख दलितों के प्रश्नों पर गवाही।
- मार्च 1930 नासिक में कालाराम मन्दिर सत्याग्रह।
- सितम्बर–अक्तूबर 1930 भारतीय दलित नेता के रूप में गोलमेज परिषद के लिए निमन्त्रण और उस हेतु लंदन प्रस्थान।
- फरवरी 1931 मुंबई को वापिस।
- फरवरी 1932 मद्रास में शानदार स्वागत।
- मई 1932 इंग्लैंड के लिए प्रस्थान। दलितों के लिए 'स्वतंत्र मतहार' संघ की मांग।
- सितम्बर 1932 गांधीजी के उपोषण पर, पुणे करार।
- नवम्बर, 1932 गोलमेज परिषद हेतु तीसरी बार लंदन प्रस्थान।
- 27 मई 1935 पत्नी रमाबाई की मृत्यु।

- जून 1935 शासकीय विधि महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में नियुक्ति।
- 13 अक्तूबर 1935 येवला के दलित परिषद में धर्म–परिवर्तन की घोषणा।
- नवम्बर 1936 स्वास्थ्य हेतु यूरोप को प्रस्थान।
- 1936 स्वतंत्र मजदूर दल की स्थापना।
- जनवरी 1937 मुंबई वापिस।
- फरवरी 1937 विधिमंडल के चुनाव में स्व. म. द. की विजय। अम्बेडकर जी विजयी।
- मई 1938 प्राचार्य पद से त्यागपत्र।
- जनवरी 1939 पुणे के गोखले अर्थसंस्था में भाषण।
- जून 1940 अम्बेडकर–सुभाषचन्द्र बोस भेंट।
- 1940 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' प्रकाशित।
- मार्च 1942 क्रिप्स अम्बेडकर भेंट।
- जुलाई 1942 श्रममंत्री पद की स्वीकृति।
- नवम्बर, 1945 हिन्द कामगार परिषद के अध्यक्ष।
- जून 1946 मुंबई में सिद्धार्थ कॉलेज की स्थापना।
- जुलाई 1947 में संविधान समिति पर बंगाल विधान–सभा से चुनाव।
- अगस्त 1947 संविधान प्रारूप लेखन समिति के अध्यक्ष, स्वतंत्र भारत के प्रथम न्याय और विधि मंत्री के रूप में नियुक्ति।
- 15 अप्रैल 1948 डॉ. शारदा कबीर से पुनः विवाह।
- 20 नवम्बर 1948 संविधान की ग्यारहवीं धारा स्वीकृत। अस्पृश्यता कानून समाप्त।
- मई 1950 'बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' का लेखन पूर्ण।
- जून 1950 औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में मिलिंद कॉलेज की स्थापना।
- 20 सितम्बर 1951 मंत्रीपद से त्यागपत्र।
- नवम्बर 1951 मुंबई में स्थायी निवास हेतु दिल्ली से प्रस्थान।
- जून 1952 कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 'डाक्टर ऑफ लाज' की उपाधि से सम्मानित।
- जनवरी 1953 उस्मानिया विश्विविद्यालय से डॉक्टर ऑफ लिटरेचर (डी.लिट.)।
- दिसम्बर 1954 विश्व बौद्ध परिषद हेतु रंगून प्रस्थान।
- 14 नवम्बर 1956 बौद्धधर्म् में प्रवेश।
- 6 दिसम्बर 1956 दिल्ली में महानिर्वाण।
- देश के संविधान निर्माता डॉ भीमराव अम्बेडकर को 31 मार्च 1990 को मरणोपरांत 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया था।

साभारः पुस्तक– डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, लेखकः डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

फोटो गैलरी

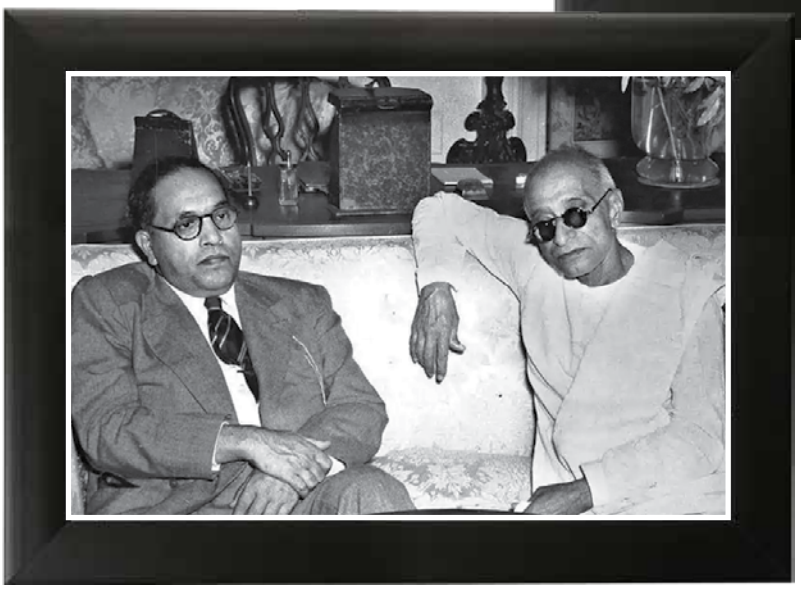

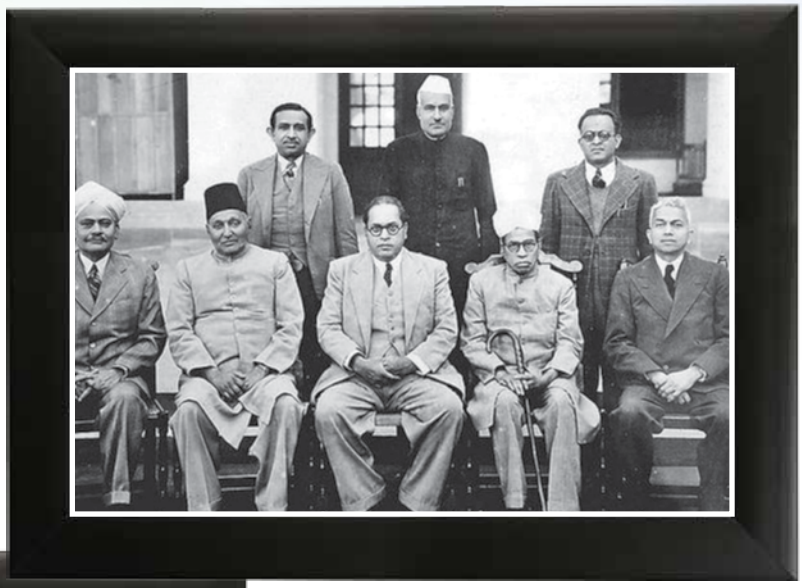

A Greatful Nation Pay Homage to
Dr.B.R.Ambedkar, Father of Modern India.
CONSTITUTION
OF
INDIA
26 th November - Indian Constitution Day

भारत
INDIA
THE CONSTITUTION OF INDIA
2015
डॉ. वी. आर. अम्बेडकर और भारत का संविधान
Dr. B.R. Ambedkar and Constitution of India
500

संविधान की कहानी

डॉ. अतुल कुमार तिवारी

दुनिया के सबसे बड़े लिखित संविधान का सृजन, उसकी प्रस्तावना और विशेषताएं अपने आप में एक गहन खोज का विषय हैं। संविधान सभा के गठन से लेकर संविधान के प्रारूप इसकी व्यापक दृष्टि, देश का भौगोलिक और सांस्कृतिक विस्तार, भाषाई और सांस्कृतिक विविधता, लोगों की जरूरतें, आजादी के बाद का परिवेश जैसी पृष्ठभूमि में यह कहानी काफी कुछ कहती है। किस तरह देश का सर्वोच्च कानून स्वरूप में आया, इसके पीछे कौन से विचार रहे होंगे, वे कौन लोग थे जो इसे अंजाम देने में जुटे और भारत के अलावा किन–किन देशों के विधान से लोकहित की चीजें भारत के संविधान में समाहित हुई। इन पर एक नजरः

संविधान सभा का गठन

इसकी शुरुआत सन् 1946 में संविधान सभा के गठन से हुई, जिसे अंग्रेजों ने कैबिनेट मिशन योजना के तहत भारत की आज़ादी की तैयारियों के सिलसिले में मंजूरी दी थी। संविधान सभा के सदस्य भारत के राज्यों के सदनों के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा चुने गए। संविधान सभा के सदस्यों के लिए चुनाव 9 जुलाई 1946 को हुआ। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई जिसमें सच्चिदानंद सिन्हा को इस सभा का अस्थाई सदस्य बनाया गया। प्रमुख सदस्यों में पंडित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर भीमराव अम्बेडकर, डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, चक्रवर्ती राज गोपालाचारी, डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी, एन गोपाला स्वामी आयंगर, सरोजिनी नायडू आदि चेहरे शामिल थे। इनके अलावा आचार्य जे वी कृपलानी, पंडित गोबिंद वल्लभ पंत, के. एम. मुंशी, पंडित हृदयनाथ कुंजुरू, बाल गोविंद खेर, राजर्षि पुरूषोतम दास टंडन और हंसा मेहता सरीखे प्रमुख लोग इस सभा के सदस्य बनाए गए।

संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 389 थी। इनमें राज्यों के 292 प्रतिनिधि, देशी रियासतों के 93 प्रतिनिधि, मुख्य आयुक्त क्षेत्रों के तीन प्रतिनिधि और बलूचिस्तान का एक प्रतिनिधि शामिल था। लेकिन बाद में मुस्लिम लीग की संख्या कम होने के चलते इसमें 299 प्रतिनिधि रह गए। हैदराबाद रियासत का कोई भी प्रतिनिधि संविधान सभा में सम्मिलित नहीं हुआ जबकि जयप्रकाश नारायण और तेज बहादुर सप्रू ने संविधान सभा की सदस्यता लेने से मना कर दिया।

11 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा की बैठक में डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद को स्थाई अध्यक्ष चुना गया जो अंत तक इस पद पर बने रहे। डॉक्टर बी आर अम्बेडकर को संविधान का प्रारूप बनाने वाली समिति का अध्यक्ष चुना गया। प्रारूप रिपोर्ट तैयार करने के लिए 13 समितियां बनाई गई।

संविधान सभा की प्रमुख समितियां

समिति	अध्यक्ष
सर्वोच्च न्यायालय समिति	एस0 वारदाचारियार
सदन समिति	पट्टाभि सीता रम्मैया
संचालन समिति	डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
संघ संविधान समिति	पं0 जवाहर लाल नेहरू
संघ शक्ति समिति	पं0 जवाहर लाल नेहरू
राज्य समिति	पं0 जवाहर लाल नेहरू
मूल अधिकार उप समिति	जे0 बी कृपलानी
प्रारूप समिति	डॉ0 भीमराव अम्बेडकर

प्रांतीय संविधान समिति	सरदार वल्लभ भाई पटेल
परामर्श समिति	सरदार वल्लभ भाई पटेल
नियम समिति	डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
अल्पसंख्यक उपसमिति	एच सी मुखर्जी

संविधान सभा में चर्चा

संविधान सभा में 13 दिसम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जिसे संविधान सभा ने करीब एक महीने बाद 22 जनवरी 1947 को स्वीकृति दे दी। फिर 22 जुलाई 1947 को राष्ट्रीय ध्वज अपनाया गया। संविधान के प्रारूप पर कुल 114 दिन बहस हुई। उस काल खंड की चर्चा करें, तो आंकडों के मुताबिक संविधान सभा पर अनुमानित खर्च करीब एक करोड़ रुपये आया था। 29 अगस्त 1947 को संविधान सभा की प्रारूप समिति का गठन हुआ, जिसमें डॉ0 बी आर अम्बेडकर को प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया।

जनवरी 1948 में भारतीय संविधान का पहला प्रारूप विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत किया गया। चार नवम्बर 1948 से शुरू हुई यह चर्चा करीब 32 दिनों तक चली। इस दौरान 7635 संशोधन प्रस्तावित किए गए और उनमें से 2473 पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। संविधान निर्माता डॉ0 बी आर अम्बेडकर को संविधान का अंतिम प्रारूप तैयार करने में दो साल 11 महीने और 18 दिन लगे। 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अंगीकार कर लिया। इसके बाद 24 जनवरी 1950 को संविधान सभा के 284 सदस्यों ने संविधान के मसौदे पर हस्ताक्षर किए।

संविधान लागू–26 जनवरी 1950

26 जनवरी 1950 को देश का सर्वोच्च कानून, संविधान लागू कर दिया गया। गौरतलब है कि जिस दिन संविधान पर हस्ताक्षर हो रहे थे उस दिन मूसलाधार बारिश हो रही थी, जिसे शुरू संकेत की संज्ञा दी गई।

मूल संविधान

संविधान की मूल प्रति हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में हाथ से लिखी गई थी। लेखक थे–प्रेम बिहारी नारायण रायज़ादा। मूल प्रति में कहीं भी टाइपिंग या प्रिंट का इस्तेमाल नहीं हुआ। प्रत्येक पृष्ठ को जटिल लेख और इटैलिक धारा प्रवाह में लिखा गया। श्री रायज़ादा जो एक कैलीग्राफी आर्टिस्ट थे उन्होंने नम्बर 303 के 254 पैन होल्डर निब का इस्तेमाल कर हर पृष्ठ को खूबसूरत अंदाज में लिखा। इसे लिखने में उन्हें छह महीने का समय लगा। इसके एवज में उन्होंने कोई भी पारिश्रमिक नहीं लिया और शर्त रखी कि संविधान के हर पृष्ठ पर वे अपना नाम लिखेंगे तथा अंतिम पेज पर अपने नाम के साथ अपने दादा का भी नाम लिखेंगे।

संविधान की मूल प्रति के हर पृष्ठ को आचार्य नंदलाल बोस ने चित्रों से सजाया। प्रस्तावना पृष्ठ की सज्जा नंदलाल बोस के शिष्य राम मनोहर सिन्हा ने की। भारत की समृद्ध परम्परा और सांस्कृतिक विरासत के प्रतीकों को मूल संविधान के प्रत्येक पृष्ठ पर सुरूचिपूर्ण चित्रों के साथ सुसज्जित कर रखा गया है। संविधान की अंग्रेजी और हिन्दी की मूल प्रति भारतीय संसद के पुस्तकालय में हिलियम से भरे विशेष पात्र में सुरक्षित है।

विशाल संविधान

भारत के संविधान को दुनिया के किसी भी देश के सबसे लम्बे लिखित संविधान के रूप में जाना जाता है। जब संविधान की रचना हुई उस समय इसमें 395 अनुच्छेद थे जो 12 भागों में विभाजित थे और इसमें केवल आठ अनुसूचियां थीं। तब से लेकर आज तक इसमें 101 संशोधन हुए हैं जो संविधान सभा द्वारा प्रस्तावित देश के सर्वोच्च कानून की व्यापक प्रकृति को दर्शाता है। आज की तारीख में भारत के संविधान में 465 अनुच्छेद हैं जो 22 भागों में विभाजित हैं और इसमें 12 अनुसूचियां शामिल हैं। संविधान में प्रशासन अथवा सरकार के अधिकार, उसके कर्तव्य और नागरिकों

के अधिकारों की व्याख्या की गई है। संविधान निर्माता डॉ0 बी आर अम्बेडकर ने प्रतिपादित किया था कि भारत एक संघ है और किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है। यही बात संविधान के पहले अनुच्छेद में परिलक्षित होती है जिसके अनुसार भारत राज्यों का संघ है। सरकार के संसदीय स्वरूप की व्यवस्था संविधान पर आधारित है।

विश्व के संविधानों की प्रमुख अवधारणाएं समाहित

संविधान निर्माताओं ने देश के सर्वोच्च कानून की संरचना करते समय न सिर्फ भारत की सभ्यता, संस्कृति, परम्परा और विशेषताओं का ध्यान रखा, बल्कि दूसरे देशों के संविधान से उन विचारों को समाहित किया जो एक लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र की अवधारणा को मजबूती प्रदान करते हैं। इस सिलसिले में दुनिया के कुछ देशों के संविधान से कुछ प्रस्तावनाएं भारत के संविधान में ली गई जिनका उद्देश्य सहयोगी संघवाद, एकता और मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों को बल प्रदान करना है।

देश	**भारत के संविधान में समाहित अवधारणा**
अमरीका	संविधान की प्रस्तावना–हम लोग संघात्मक शासन प्रणाली, मौलिक अधिकार, न्यायिक समीक्षा प्रणाली, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और उपराष्ट्रपति का पद
आयरलैंड	राज्य के नीति निर्देशक तत्व, राष्ट्रपति निर्वाचन की पद्धति और राज्यसभा में कुछ सदस्यों का मनोनयन
ऑस्ट्रेलिया	समवर्ती सूची तथा व्यापार और समागम की स्वतंत्रता
कनाडा	संघीय ढांचे में मजबूत केन्द्रीय सत्ता की अवधारणा, सरकार की अवशिष्ट शक्तियां
जर्मनी	आपातकाल की अवधारणा
जापान	कानून द्वारा स्थापित शब्दावली
दक्षिण अफ्रीका	संविधान संशोधन की प्रक्रिया
फ्रांस	स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का सिद्धांत, गणतंत्र
ब्रिटेन	संसदीय प्रणाली, कानून बनाने की प्रक्रिया, संसद की प्रक्रिया, एकल नागरिकता
रूस	मूल कर्तव्य

संविधान और संविधान दिवस

भारत का संविधान देश का सर्वोच्च विधान है जो 26 नवम्बर 1949 को पारित हुआ। यह दिन भारत के संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है। जबकि 26 जनवरी 1950 के दिन से हमारा संविधान प्रभाव में आया और इसी दिन भारत एक गणतंत्र के रूप में घोषित हुआ। तब से 26 जनवरी का दिन भारत में गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। संविधान की शक्ति किसी भी देश के नागरिकों के निहितार्थ है जो लोकतंत्र की उस अवधारणा को शक्ति प्रदान करता है जिसमें कहा गया है कि लोकतंत्र लोगों का, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए है। 130 करोड की आबादी वाले, अनेक भाषाओं, अनेक संस्कृतियों, अनेक परम्पराओं वाले इस विशाल देश को हमेशा आगे ले जाने की ताकत संविधान के द्वारा निर्धारित नीति नियमों से मिलती है और यही उसे जीवंत बनाए रखता है। नमन करते हैं। अपने देश के संविधान को जो हमारी, आपकी और हम सबकी ताकत है।

महिला सशक्तिकरण में डॉक्टर अम्बेडकर की भूमिका

हरी लाल

बाबा साहब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि–''यदि किसी समाज की प्रगति को मापना है तो उस समाज की स्त्रियों के विकास को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कितना विकसित समाज है''।

प्राचीन काल में नारी स्वतंत्र थी, अपने पूरे परिवार की मुखिया थी। सबकी देखभाल करती थी। वह शिकार करती थी और मिल–बांटकर खाती थी, कोई भेदभाव नहीं था। इसका अंदाजा एक वाकये से लगाया जा सकता है कि बालक सत्यकाम जाबाल ऋषि आश्रम में जाता है और विद्या अध्ययन का अनुरोध करता है। ऋषिवर पूछते हैं कि तुम्हारे पिता का क्या नाम हैं बालक निरूत्तर हो जाता है और अपनी मां जबाला से अपने पिता का नाम पूछता है। जबाला उत्तर देती है कि–युवा अवस्था में मैंने कई ऋषियों–मुनियों के यहां काम किया है, उनमें से किसी एक के पुत्र हो। सत्यकाम जाबाल ने ऋषिवर से पूरी बात बताई और वे उसे शिक्षा देने के लिए तैयार हो गए।

कालान्तर में हथियारों का युग आया, उत्पादन बढ़ा और व्यक्तिगत सम्पत्ति का बोलबाला हुआ। फिर धीरे–धीरे नारी की स्वतंत्रता कम होती चली गई। नारी गुलाम, गुलाम और गुलाम होती चली गई और उसका वजूद प्रतीकात्मक रह गया। बाल्यवस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रों द्वारा संरक्षित की जाने लगी। साहिर लुधियानवी ने लिखा है कि. ''औरत ने जन्म दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाजार दिया।'' हमारा देश परम्पराओं के चलते ऐसे समाज में जकड़ गया, जहां पुरोहित मनमानी कर रहे थे। चैतन्य महाप्रभु, कबीर साहब, नरसिंह सहित अनेक मनीषियों ने समाज को इस जकड़न से निकालने का प्रयास किया। एक समय यह भी था जब समाज सती प्रथा पर गर्व कर रहा था। राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ आंदोलन किया और कहा कि 'सती प्रथा पाप है, विधवा दहन पाप है और यह देश में नहीं चल सकता।

ईश्वरचंद विद्यासागर ने कहा कि विधवाओं को जीवनभर यातनाएं झेलनी पड़ती हैं उनका पुनर्विवाह होना चाहिए। उन्होंने समाज को रूढ़िगत परम्परा और कुरीतियों से मुक्ति दिलाने के लिए शिक्षा पर जोर दिया। बाद के दिनों में ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, संत गाडगे, ई.वी. रामास्वामी पेरियार, नारायणा गुरु सहित कई महापुरुष आए जिन्होंने इन सामाजिक कुरीतियों के पीछे अशिक्षा को मुख्य कारण माना और लोगों को शिक्षित करने का अभियान चलाया।

इसी दौर में डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर आए उनकी विचारधारा का मूल आधार समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व था। उन्होंने शिक्षित बनो, संगठित हो और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करो का मूल मंत्र दिया। उनका मत था कि किसी समाज की प्रगति का अनुमान उस समाज की महिलाओं द्वारा की गई प्रगति से लगाया जा सकता है कि वह समाज कितना प्रगतिशील है। वे कहते थे कि सामाजिक मान्यताओं का बंधन स्त्रियों के पिछड़ेपन का मूल कारण है। महिलाओं का सारा अस्तित्व और व्यक्तित्व सामाजिक बंधनों और रूढ़िवादी मान्यताओं के बोझ से दबा है।

बाबा साहब ने महिलाओं को घर से बाहर निकलकर अपनी समस्याएं कहने का आह्वान किया जिसका परिणाम

रहा बड़ी संख्या में महिला अपनी पीड़ा और दुख–दर्द सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने के लिए मंचों पर आने लगी। 13 नवम्बर, 1927 में अमरावती मंदिर में प्रवेश के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें भारी संख्या में महिलाएं शामिल हुई। 28 जुलाई, 1928 को बम्बई विधानसभा में कारखानों और संस्थानों में काम करने वाली महिलाओं के लिए प्रसूति अवकाश विधेयक पेश किया। यह विधेयक सर्वसम्मति से सदन पर पारित होकर कानून बन गया। इस कानून के बन जाने के बाद महिलाओं को प्रसूति अवकाश और कारखानों में क्रैच की व्यवस्था दी गई।

डॉक्टर अम्बेडकर महिलाओं के साथ–साथ श्रमिक वर्ग के कल्याण के प्रति भी चिंतित थे। 1942 से 1946 तक वायसराय की श्रम कार्यकारी परिषद में श्रम सचिव के रूप में 27 नवम्बर, 1942 को सातवें श्रम सम्मेलन के दौरान श्रम अवधि 12–14 घंटे से घटाकर 8 घंटे करने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने खदान मातृत्व लाभ योजना कानून और सवैतनिक अवकाश के साथ भूमिगत कोयला खदानों में महिलाओं ने काम न कराने और बिना किसी लैंगिक भेदभाव के समान काम के लिए समान वेतन का कानून बनवाया। डॉक्टर अम्बेडकर मजदूरों के संरक्षण के लिए भूमि सुधार और आर्थिक गतिविधियों पर राज्य के हस्तक्षेप के पक्षधर थे। संविधान सभा में उन्होंने प्रमुख केन्द्रीय उद्योगों को सरकारी क्षेत्र में, बुनियादी उद्योगों को सरकार द्वारा नियंत्रित निगमों द्वारा संचालित करने और कृषि को राष्ट्रीय उद्योग घोषित करने का प्रस्ताव दिया।

देश की स्वतंत्रता के बाद बाबा साहब को संविधान बनाने के मसौदा कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया। अपने मसौदों में उन्होंने समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को आधार बनाया। उनका मानना था कि सामाजिक न्याय का अर्थ, अधिक से अधिक लोगों को खुशियां मिलना है। संविधान में उन्होंने जहां सदियों से दबे कुचले दलित वर्ग के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान किए। वहीं जाति–धर्म से ऊपर उठकर सभी वर्गों के लिए समान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार देने के समान अवसर उपलब्ध कराए। उन्होंने तमाम विरोधाभासों के बावजूद केन्द्र को मजबूत बनाया जिसके कारण भारत जो विभिन्न स्वतंत्र रियासतों में बंटा हुआ था को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने में मदद मिली। डॉक्टर अम्बेडकर ने कानून मंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल सदन में पेश किया। भारी विरोध के चलते यह विधेयक सदन में गिर गया और 1951 में बाबा साहब ने तत्काल इस्तीफा दे दिया।

बाबा साहब ने महिलाओं के मानवाधिकार और कानून को व्यवहार में लाए जाने, इसकी जानकारी पुलिस और महिलाओं को देने, पुलिस, वकील और न्याय प्रक्रिया से जुड़े लोगों को संवेदनशील बनाने के लिए प्रशिक्षण देने, राज्य सरकार को महिला कल्याण की नीति बनाने और नीति निर्माताओं को संवेदनशील बनाए जाने, महिलाओं से जुड़े मामलों की सुनवाई महिला न्यायाधीशों या संवेदनशील पुरुष न्यायाधीशों से कराये जाने, आंकड़ों के संग्रहण में महिलाओं द्वारा किए गए सभी कार्यों को शामिल करना और उसका आर्थिक मूल्याकंन किये जाने और राष्ट्रीय आय में महिलाओं के योगदान का हिस्सा जोड़े जाने, संसाधनों के आंवटन में पचास प्रतिशत आरक्षण महिलाओं के लिए सुरक्षित करने, जिला और राज्य स्तर पर महिलाओं के विकास कार्यक्रमों का आयोजन कर मूल्यांकन करने के लिए संवेदनशील महिला अधिकारियों की नियुक्ति किए जाने, सत्ता पर महिलाओं का अधिकार और नियंत्रण बनाए जाने, महिला संवेदी बजट एवं लैंगिक विकास के नाम पर एक प्रमुख बजट शीर्ष बनाने सहित उन्हें पचास प्रतिशत आरक्षण राजनीतिक और आई.ए.एस., आई.पी.एस. जैसी केन्द्रीय सेवाओं में दिए जाने का सुझाव दिया था।

बाबा साहब के सुझाव का अनुपालन उनके जीवन काल से शुरू हो गया। केन्द्र सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएं बनायी जिसमें महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण को प्राथमिकता दी जाने लगी। पंचायतीराज अधिनियम में महिलाओं का आरक्षण सुनिश्चित किया जाना उनकी सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल थी। शिक्षा का प्रचार–प्रसार होते ही आम जनता

में महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी और बेटियों की शिक्षा के लिए लोग जागरूक हुए। 1980 के दशक में ग्रामीण इलाकों के स्कूलों में छात्राओं की उपस्थिति नगण्य थी। लेकिन अब देश एंव राज्यों के सभी शिक्षा बोर्डों का एक ही परिणाम आ रहा है कि बेटों से बेटियां आगे हैं। केन्द्रीय एवं प्रांतीय सेवाओं में भी बेटियां प्रथम दस स्थानों में से तीन–चार स्थान झटकने में सफल हो रही हैं। रक्षा सेवाओं में शामिल होकर बेटियां बेटों के कंधे से कंधा मिलाकर दुश्मन को मुंहतोड़ जवाब दे रही है। हालांकि विधायिका में आरक्षण नहीं है, फिर भी महिला उम्मीदवारों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। आज महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही हैं और आंदोलन कर रही हैं। 13 नवम्बर, 1927 को बाबा साहब द्वारा महिलाओं को अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए आह्वान किया गया था। जिस दिन महिलाएं अपने संघर्ष के बूते विधायिका सहित केन्द्रीय और प्रांतीय सेवाओं के हर क्षेत्र में पचास प्रतिशत स्थान प्राप्त कर लेंगी वह दिन भारत के लिए स्वर्णिम होगा और बाबा साहब के सपनों का महिला सशक्तिकरण अभियान सफल हो जाएगा।

ग्राम स्वराज, संविधान, गांधी और अम्बेडकर

उमेश चतुर्वेदी

26 जनवरी 1950 को लागू होने के ही दिन से भारतीय संविधान सर्वाधिक प्रतिष्ठित और पूज्य ग्रंथ रहा है। भारतीय राज एवं समाज व्यवस्था के साथ ही लोकतंत्र पर जब भी कोई संशय होता है, संकट की कोई घड़ी आती है, आजाद गणतांत्रिक देश के नागरिक के नाते सबसे पहला और गंभीर ध्यान संविधान का आता है। इस संविधान को लेकर दो अवधारणाएं प्रचलित हैं। पहला यह कि इस पर गांधीजी का प्रभाव है तो दूसरा, इसका निर्माण स्वतंत्र भारत के पहले विधि मंत्री डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने किया था। विदेशी अंग्रेजी शासन से भारत को जिस महामानव गांधी की अगुआई में आजादी मिली, उनका संप्रभु भारत के संविधान पर प्रभाव पड़ना लाजमी है। हालांकि यह भी आंशिक सत्य ही है। चूंकि अम्बेडकर संविधान सभा के तहत सात सदस्यीय प्रारूप और लेखन समिति के अध्यक्ष और उनमें से सबसे ज्यादा मेहनत उन्होंने ही की, इसलिए उन्हें संविधान निर्माता का सम्मान हासिल हुआ।

आजाद भारत का संविधान तैयार करने के लिए जिस संविधानसभा का चुनाव हुआ था, उसमें तीन सौ से ज्यादा सदस्य थे। जिसकी अध्यक्षता डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद ने की थी। लेकिन हकीकत यह है कि संविधान की रचना में संविधानसभा के जिन चार सदस्यों ने सबसे गंभीर और सक्रिय भूमिका निभाई, उनमें अकेले गैर कांग्रेसी डॉक्टर अम्बेडकर ही थे। बाकी तीन सदस्य कांग्रेसी थे और तीनों भारतीय राजनीति के बड़े नाम थे। ये हस्तियां थीं, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद। पंडित नेहरू भी गांधीजी के ही शिष्य थे, लेकिन उनकी तुलना में बाकी दोनों कहीं ज्यादा गहरे गांधीवादी थे। इसके बावजूद भारतीय संविधान में कम से कम ग्राम पंचायत को लेकर गांधीजी के विचारों का असर नहीं दिखता। गांधीजी ने 10 सितंबर 1931 को यंग इंडिया के अंक में लिखा था, मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयास करूंगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलंबन से मुक्त कर दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब भी यह महसूस करेंगे कि यह उनका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्व है।' आजाद भारत के संविधान में व्यक्ति इकाई होगा या गांव, इस पर संविधान सभा में बहस हुई। लेकिन गांधीजी की सोच इस मसले पर स्पष्ट थी। वे गांव को ही भारतीय आजादी के बाद की व्यवस्था की मूल इकाई बनाना चाहते थे। जब आजादी नजदीक थी, गांधीजी ने अपने इस विचार को और आगे बढ़ाया। एक जुलाई 1947 के यंग इंडिया के अंक में उन्होंने लिखा, आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में जम्हूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका अर्थ यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके।' अपने इसी लेख में गांधी आगे कहते हैं, ' ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उनका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिंदगी मीनार की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्य बिंदु होगा।'

जाहिर है कि गांधी भारतीय संविधान की मूल इकाई गांवों को बनाना चाहते थे, जिसका व्यक्ति भी एक हिस्सा होता। चिंतन की बात है कि गांधी के सपनों के मुताबिक अगर संविधान की रचना हुई होती, गांवों और ग्राम पंचायतों को इस तरीके से अधिकार देने और उन्हें ताकतवर बनाने की कोशिश होती तो भारत का

कैसा नक्शा होता/जब भारतीय संविधान रचा जाने लगा तो गांधी की इस सोच को अम्बेडकर ने अस्वीकार कर दिया। संविधान सभा में जब यह बहस हुई कि संविधान में देश की इकाई गांव को माना जाए या फिर व्यक्ति को तो व्यक्ति का पलड़ा भारी रहा। हालांकि संविधान सभा के गांधीवादी सदस्य संविधान में देश की बुनियादी इकाई गांव को मानने के लिए तर्क दे रहे थे। इस मुद्दे पर संविधानसभा में जमकर बहस हुई। लेकिन अम्बेडकर ने इसे खारिज कर दिया। बाबा साहब का तर्क था, ''ग्राम या देहात के प्रति जिन्हें अभिमान है, वे ये नहीं सोचना चाहते कि देहातों में घटित घटनाओं या उसकी भविष्य की निर्मिति में गांव वालों का क्या योगदान रहा। इस देश में अनेक राजनीतिक घटनाएं हुईं। हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिख और अंग्रेज बारी–बारी से इस पर राज्य करते रहे। पर पंचायतें वैसी की वैसी रहीं। शत्रुओं की सेना इन देशों से कूच कर रही थीं, परंतु गांव वालों ने कभी किसी शत्रु का विरोध नहीं किया। उलटे उनके लिए रास्ता बनाकर दिया।'' अम्बेडकर ने अपने इसी भाषण में आगे कहा, ''पंचायतों की इस निष्क्रियता का अहसास होते हुए भी उनके प्रति हम अभिमान कैसे रखें। महत्व टिके रहने का नहीं है। प्रश्न है कि किस स्तर पर ये टिकी हैं।....ग्राम पंचायतों ने इस देश का नाश ही किया है। हमारे देहात और हमारी पंचायतें स्थानिक अहंकारों की गंदगी से युक्त, अज्ञान की गुफा, संकुचितता और जातिवाद के प्रतीक बन गए हैं। ऐसी पंचायतों को इकाई कैसे बना सकते हैं?''

अम्बेडकर का जिस परिवेश में पालन–पोषण हुआ था, जिस तरह की उनकी जीवन यात्रा गुजरी थी, संविधानसभा में उन्होंने जो कहा, दरअसल उनके अनुभवों की ही अभिव्यक्ति थी। उन्होंने पंचायतों और देहातों को लेकर करीब 75 साल पहले जो कहा था, देहाती सोच किंचित वैसी ही है। बल्कि जातिवाद और स्थानिक अहंकारों का वहां विस्तार ही हुआ है। लेकिन यह क्यों नहीं मानना चाहिए कि इसमें उस मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था का भी हाथ है, जो संविधान प्रदत्त व्यवस्था पर चलती है, चुनाव जीतती है और सरकार बनाती है।

गांव को लेकर दूसरी आजादी के नायक और गांधीवादी–समाजवादी जयप्रकाश नारायण के विचार गांधी विचार का ही विस्तार हैं। अपने निबंध 'भारतीय राज व्यवस्था का पुनर्निर्माण' में जयप्रकाश नारायण प्राचीन काल से चली आ रही ग्राम व्यवस्था को लेकर बेहद आशान्वित नजर आते हैं। इस निबंध में जयप्रकाश नारायण लिखते हैं ''भारत शायद लोकतंत्र की सबसे प्राचीन भूमि रहा है और उसके कुछ गणतंत्र हजार–हजार साल तक जीवित रहे हैं। जब राजतंत्र की व्यवस्था प्रचलित हो गई और (गणतांत्रिक) समितियां निष्क्रिय हो गईं, तब भी ग्राम और नगर समुदाय, व्यापारी और कारीगर संघ, वर्ण व्यवस्था, धर्म या सामाजिक नीतिशास्त्र केंद्रीय राज्य से स्वतंत्र होकर कार्य करते रहे। जबकि केंद्रीय राज व्यवस्था ग्राम और नगर समुदाय, व्यापारी और कारीगर संघ के मामले में विरले ही हस्तक्षेप करते थे। इस तरह इस व्यवस्था ने एक सुदृढ़ लोकतांत्रिक आधार कायम रखा। ग्राम समुदायों का लोकतंत्र इतना सुदृढ़ और सक्षम था कि वह ब्रिटिश काल तक जारी रहा।''

बहरहाल संविधानसभा में ग्राम पंचायतों की व्यवस्था के संदर्भ में देहात और ग्राम को लेकर अम्बेडकर ने जो भाषण दिया, उस पर जबरदस्त हंगामा हुआ। इससे अम्बेडकर दबाव में भी आए और उन्हें एक संशोधन प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। इसके बाद ही संविधान के मार्ग दर्शक तत्वों में ग्राम पंचायतों की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। जिसकी बुनियाद पर 1993 में संविधान में 73वें संशोधन के जरिए त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था को मंजूरी दी गई। हालांकि यह व्यवस्था भी ना तो गांधी की सोच के मुताबिक है और ना ही जयप्रकाश की व्याख्या के अनुसार है।

डॉक्टर अम्बेडकर भले ही ग्राम पंचायत को शासन और संवैधानिक व्यवस्था की इकाई नहीं मानते थे, लेकिन ग्राम सुधार एवं कृषि विकास को लेकर उनकी सोच स्पष्ट थी। वे मानते थे कि देश की व्यवस्था में किसानों का सबसे ज्यादा शोषण हुआ है। इसलिए उन्होंने किसानों और गांवों की स्थिति सुधारने के लिए कुछ सुझाव जरूर दिए थे। अपने मशहूर ग्रंथ 'स्टेट एंड माइनॉरिटी (राज्य और अल्पसंख्यक)' में डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा है,

1. संपूर्ण कृषि भूमि का राष्ट्रीयकरण किया जाए। जमींदारी और भूमि मालिकों को भूमि का पैसा दिया जाए।

2. सामूहिक खेती शुरू की जाए। श्रमिकों और मजदूरों को मजदूरी की गारंटी दी जाए।

संविधान में गांव और देहात को लेकर विशेष प्रावधान के लिए अम्बेडकर भले ही सहमत नहीं थे लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं है कि ग्राम और कृषि व्यवस्था को लेकर वे चिंतित नहीं थे और उन्होंने इसकी भलाई के लिए उपाय नहीं सुझाए थे। खेती और किसानी को लेकर अम्बेडकर की सोच को 1936 में गठित स्वतंत्र मजदूर पार्टी के घोषणा पत्र में देखा जा सकता है, जिसकी स्थापना उन्होंने खुद की थी। इस पार्टी के घोषणा पत्र में उन्होंने लिखा थाः

1. कृषि की ओर व्यवसाय के रूप में देखा जाए। इस व्यवसाय को आर्थिक सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए भू–विकास बैंक को–ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटी, मार्केटिंग सोसायटी की स्थापना की जाए।
2. कृषि व्यवसाय आज घाटे में है, क्योंकि जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े किए गए हैं। कृषि पर बहुत बड़ी जनसंख्या निर्भर है। इस जनसंख्या को दूसरे व्यवसायों की ओर मोड़ना जरूरी है।
3. उद्योग व्यवसाय की शिक्षा देने वाले शिक्षा केंद्र शुरू करने जरूरी हैं।
4. जनहित की दृष्टि से देश के बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण जरूरी है।
5. देश की अर्थव्यवस्था का लाभ विशिष्ट वर्ग को ही होता है। बहुत बड़े वर्ग पर अगर अन्याय होता हो तो इस व्यवस्था को बदलना, परिवर्तित करना या नष्ट करना जरूरी है।
6. जमीन जोतने वाले की ही होनी चाहिए।
7. मजदूरों का शोषण कम कर उनके वेतन पर सरकारी नियंत्रण होना चाहिए। उन्हें उनकी छुट्टियों और काम की अवधि सवेतन छुट्टी, बोनस, पेंशन आदि देने की कानूनी व्यवस्था जरूरी है।

ध्यान रहे, अम्बेडकर ने स्पष्टतः इस घोषणा पत्र में गांव को लेकर कुछ भले ही नहीं कहा हो, लेकिन कृषि के जिन संकटों की ओर वे ध्यान दिला रहे थे, वे आज भी बरकरार हैं। उन्हें करीब 36 करोड़ की आबादी के हिसाब से कृषि जोत भूमि छोटी लग रही थी तो सोचा जाना चाहिए कि 135 करोड़ की आबादी के लिहाज से वह जोत कितनी छोटी हो चुकी है। बहरहाल यह शोध और गहन अध्ययन का विषय है कि संविधानसभा का सदस्य बनने से करीब एक दशक पहले अम्बेडकर कृषि को लेकर जो कह रहे थे, उसे सुधारने और उसकी बुनियादी इकाई ग्राम पंचायत को स्पष्ट संवैधानिक अधिकार देने से सहमत सिर्फ इसीलिए नहीं थे कि देहातों में जातिवादी अहमन्यता ज्यादा होती है। दरअसल गांधी अपनी सोच में ग्राम स्वराज के जरिए ही देश की भावी व्यवस्था और विकास की तस्वीर देख रहे थे। जिसे जाने या अनजाने संविधान में तत्काल शामिल नहीं किया जा सका। बेशक अम्बेडकर का ग्राम स्वराज गांधी के ग्राम स्वराज की तरह का नहीं था। लेकिन उनके दस्तावेजों के अध्ययन से यह जरूर जाहिर होता है कि अम्बेडकर की चिंताओं के केंद्र में गांव और गांव की खेती–किसानी को लेकर उनके सरोकार कम नहीं थे।

सागर में मिलकर अपनी पहचान खो देने वाली पानी की एक बूंद के विपरीत, इंसान जिस समाज में रहता है वहां अपनी पहचान नहीं खोता। इंसान का जीवन स्वतंत्र है। वो सिर्फ समाज के विकास के लिए नहीं पैदा हुआ है, बल्कि स्वयं के विकास के लिए पैदा हुआ है।

– डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विकास की नींव रखने वाले महामानवः भारत रत्न 'डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर'

हर्षवर्धन दीक्षित
औरंगाबाद

महाराष्ट्र में मराठवाड़ा सम्भाग का प्रमुख शहर औरंगाबाद आज एज्युकेशनल हब के रूप में जाना जाता है। यहां के विश्वविद्यालय, अभिमत विश्वविद्यालय और इंजिनियरिंग तथा मेडिकल कॉलेजों में भारत–भर के ही नहीं बल्कि विदेशों से भी कई छात्र–छात्राएं पढ़ने के लिए आते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में औरंगाबाद शहर ने आज जो मुकाम हासिल किया है, उसकी नींव रखी थी भारत रत्न डा. बाबा साहब अम्बेडकर जी ने।

17 सितंबर 1948 में हैदराबाद प्रांत निजाम के चंगुल से तत्कालीन केंद्रीय गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने आजाद कर, स्वतंत्र भारत में शामिल कराया। लेकिन सालों साल निजाम में अमल में रहने के कारण हैदराबाद प्रांत का मराठवाडा सम्भाग सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में पिछडा हुआ था। छुआछूत के कारण यहां अनुसूचित जनजाति के बच्चे शिक्षा की मुख्यधारा से कोसों दूर थे।

बाबा साहब अम्बेडकर ने इस बात को समझ कर, यहां अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध कराने का निश्चय किया और अपनी पीपल्स एज्युकेशन सोसाइटी के माध्यम से 1950 में पीईएस महाविद्यालय की स्थापना की। लगभग साल भर किराए, की जगह में चलाने के बाद 1951 की एक सितंबर को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद के हाथों पीईएस महाविद्यालय की नींव रखी गई। बाबा साहब ने डेढ़ सौ एकड़ जमीन खरीद कर महाविद्यालय का निर्माण शुरू कराया था। हैदराबाद के निजाम सरकार के श्येड्यूल कास्ट ट्रस्ट फंड से 12 लाख रुपये कर्जा ले कर यह काम शुरू तो हुआ, लेकिन बाबा साहब के अंतिम किए हुए डिजाइन के अनुसार महाविद्यालय की बिल्डिंग बनाने के लिए 20 लाख रूपयों की आवश्यकता थी। उस वक्त आवाम से चंदा जमा कर, यह रकम पूरी हुई और बाबा साहब के सपनों का महाविद्यालय बन कर तैयार हुआ। इस महाविद्यालय में अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा मिले इसलिए बाबा साहब ने मुंबई के साथ–साथ केरल, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश से भी शिक्षक नियुक्त किये थे।

सभी विषयों की पुस्तकों से सजा हुआ ग्रंथालय। साइन्स की शिक्षा के लिए जरूरी सभी उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशाला के साथ शुरू हुए इस महाविद्यालय में न सिर्फ औरंगाबाद और मराठवाड़ा बल्कि विदर्भ, खानदेश और पश्चिम महाराष्ट्र के कई शहरों से छात्र पढ़ने के लिए आते थे, और यहां आज भी आते हैं। यह महाविद्यालय भले ही अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा के लिए शुरू किया गया हो, लेकिन किसी भी जाति या धर्म के छात्र को यहां प्रवेश के लिए मना नहीं किया गया। बाबा साहब ने यहां जो बीज बोया था, उससे बने वटवृक्ष की छांव में कई छात्र–छात्राओं ने अपने जीवन को संवारा है।

न सिर्फ शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि विकास के हर एक क्षेत्र में औरंगाबाद और मराठवाड़ा आगे रहे, यह बाबा साहब का विचार था। पूना और मुंबई जैसे शहरों से औरंगाबाद पक्की सड़क से जुडा हुआ हो, औरंगाबाद में हवाईअड्डा बने, आकाशवाणी केंद्र बने, यहां की रेलवे ब्रॉडगेज में परिवर्तित हो, आदि कई विषयों पर बाबा साहब ने एक मसौदा तैयार भी किया था। 6 दिसंबर 1956 को बाबा साहब का निधन हुआ। मराठवाड़ा के विकास का सपना उनके जीवनकाल में सच नहीं हो पाया। लेकिन उनकी हर इच्छा आज यहां साकार स्वरूप ले चुकी है। इस विकास का श्रेय केवल बाबा साहब को ही जाता है, क्योंकि इस विकास की नींव बाबा साहब अम्बेडकर ने ही रखी थी, इसे कोई नकार नहीं सकता।

(यह लेख डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर की पुण्यतिथि पर अलग–अलग समाचार पत्रों तथा इंटरनेट पर प्रकाशित लेखों का सारांश है।)

डॉक्टर बाबा साहब अम्बेडकर का पत्रकारिता में योगदान

सुनील डबीर

डॉक्टर बाबा साहब अम्बेडकर का व्यक्तित्व बहुआयामी था। हिंदू समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था के विरोध में प्रखर संघर्ष आरंभ करने वाले नेता, दलितों के उद्धार के लिए कार्यरत समर्पित योद्धा, मानवाधिकार का सच्चा समर्थक तथा भारतीय संविधान और राष्ट्रीय विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले राजनेता के रूप में उन्हें जाना जाता है। इसके अलावा डाक्टर अम्बेडकर एक प्रमुख ध्येयवादी पत्रकार भी थे। उन्होंने अपने समाचार पत्रों के माध्यम से अनेक क्रांतिकारी संकल्पना, अनुभव तथा विचारों का प्रसार किया। साथ ही उन्होंने दलित, अल्पसंख्यक एवं पिछड़े लोगों को अन्याय, आर्थिक विषमता, राजनीतिक वर्चस्व और सांस्कृतिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु संगठित किया। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता' और 'जनता' इन पत्रों के माध्यम से डाक्टर अम्बेडकर ने हर प्रकार के उत्पीड़न के खिलाफ कड़ा संघर्ष किया। साथ ही अछूतों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए उन्होंने पत्रकार के रूप में ऐतिहासिक कार्य किया। किंतु भारतीय समाचार पत्रों के इतिहास में उनके पत्रकारिता के क्षेत्र में दिये योगदान पर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया।

डाक्टर अम्बेडकर समाचार पत्रों की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था में समाचार पत्रों की भूमिका के संदर्भ में उनकी सुस्पष्ट धारणा थी। अतः भारतीय संविधान की रचना करते समय उन्होंने भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोच्च स्थान दिया। संविधान की प्रस्तावना में किये गये उल्लेख के अनुसार सभी लोगों के विचारों तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना संविधान का प्रमुख उद्देश्य है। धारा 19 (1) (अ) के अनुसार नागरिकों के विचारों तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की गारंटी दी गई है और केवल इसी धारा के दूसरे परिच्छेद के अंतर्भूत स्थिति में इस पर निर्बंध लगाये जा सकते हैं।

अमरीका और इंग्लैंड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अगस्त 1917 में देश में लौटने के पश्चात डाक्टर अम्बेडकर ने कुछ समय तक बड़ोदा के महाराज के सेना सचिव और मुंबई के सिडेनहैम कालेज में प्राध्यापक के रूप में काम किया। किंतु इस दौरान उन्हें समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था, विषमता तथा अस्पृश्यता जैसी अनिष्ट प्रथाओं के कारण अन्याय और अवमान का सामना करना पड़ा। इससे अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता का उन्मूलन कर दलितों के उद्धार के लिए कड़ा संघर्ष करने का उनका संकल्प अधिक मजबूत बना।

इसी समय हमारे देश में स्वयंशासन की मांगपुरजोर तरीके से की जा रही थी। डाक्टर अम्बेडकर ने टाइम्स आफ इंडिया में उपनाम से एक पत्र लिखकर प्रतिपादन किया कि स्वयं शासन से पहले समाज में समानता और स्वतंत्रता की आकांक्षा रखनेवाले पिछड़े तथा दलितों को न्याय दिलाना प्रगत एवं उच्च वर्णीय लोगों की जिम्मेदारी है। उन्हें शिक्षा देकर प्रगति के पथ पर लाना यह उनका प्रथम कर्तव्य है। जब तक यह भूमिका निश्चित नहीं होगी, तब तक स्वयंशासन का अधिकार हमें नहीं मिलेगा। सामाजिक विषमता के कारण राजनीतिक स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए संकट निर्माण होगा, यह उनका पक्का विश्वास था। साथ ही जाति व्यवस्था का उन्मूलन कर स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता की त्रिसूत्री के आधार पर नये समाज का निर्माण करने का निश्चय उन्होंने किया।

डाक्टर अम्बेडकर ने समाचार पत्रों का महत्व तथा उनके सामर्थ्य को पहले ही जान लिया था। पिछड़े और दलित समाज के कल्याण हेतु इनकी भूमिका पर उन्होंने

काफी जोर दिया। इसी कारण से 1910 में समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर निर्बंध लगानेवाले अधिनियम का उन्होंने कड़ा विरोध किया। साथ ही तत्कालीन समाचार पत्रों पर प्रस्थापित उच्चवर्णीय तथा धनिकों के एकाधिकार का भी बाबा साहब ने विरोध किया। अस्पृश्यता उन्मूलन, सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता और राजनीतिक वर्चस्व से दलितों को मुक्त करने हेतु कटिबद्ध एक भी समाचार पत्र उस समय उपलब्ध नहीं था। इसलिए उन्होंने जनमानस पर खासा प्रभाव रखनेवाले इस माध्यम का अपने सामाजिक आंदोलन के महत्वपूर्ण साधन के रूप में उपयोग करने का निर्णय लिया। वे मानते थे कि अछूतों के साथ होने वाले अन्याय के खिलाफ दलित पत्रकारिता ही संघर्ष कर सकती है।

इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने 31 जनवरी 1920 को मराठी पाक्षिक 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। 'मूकनायक' यानी मूक लोगों का नायक। 'मूकनायक' के प्रवेशांक के संपादकीय में अम्बेडकर ने इसके प्रकाशन के औचित्य के बारे में लिखा था, 'बहिष्कृत लोगों पर हो रहे और भविष्य में होनेवाले अन्याय के उपाय सोचकर उनकी भावी उन्नति एवं उनके मार्ग के सच्चे स्वरूप की चर्चा करने के लिए वर्तमान पत्रों में जगह नहीं। अधिसंख्य समाचार पत्र विशिष्ट जातियों के हित साधन करनेवाले हैं। कभी–कभी उनका आलाप इतर जातियों को अहितकारक होता है।' इसी संपादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा, ''हिंदू समाज एक मीनार है। एक–एक जाति इस मीनार का एक–एक तल है और एक से दूसरे तल में जाने का कोई मार्ग नहीं। जो जिस तल में जन्म लेता है, उसी तल में मरता है।'' वे कहते हैं, 'परस्पर रोटी–बेटी का व्यवहार न होने के कारण प्रत्येक जाति इन घनिष्ठ संबंधों में स्वयंभू जाति है। रोटी–बेटी व्यवहार के अभाव कायम रहने से परायापन स्पृश्यापृश्य भावना से इतना ओत–प्रोत है कि यह जाति हिंदू समाज से बाहर है, ऐसा कहना चाहिए।' डाक्टर अम्बेडकर ने इस संपादकीय टिप्पणी में 97 वर्ष पहले जो कहा था, वही आज का भी कटु यथार्थ है।

सभी क्षेत्रों में दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित किए जाने के प्रबल पक्षधर थे डाक्टर अम्बेडकर। 28 फरवरी 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' के तीसरे अंक में उन्होंने यह स्वराज्य नहीं, हमारे ऊपर राज्य है' शीर्षक संपादकीय में साफ–साफ कहा था कि स्वराज्य मिले तो उसमें अछूतों का भी हिस्सा हो। स्वराज्य पर डाक्टर अम्बेडकर का चिंतन लंबे समय तक चला। 27 मार्च 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' के पांचवें अंक की संपादकीय का शीर्षक था, स्वराज्य में हमारा आरोहण, उसका प्रमाण और उसकी पद्धति'।

'मूकनायक' की आरंभिक दर्जन भर संपादकीय टिप्पणियां अम्बेडकर ने स्वयं लिखी थी। संपादकीय टिप्पणियों को मिलाकर डाक्टर अम्बेडकर के कुल 40 लेख 'मूकनायक' में छपे जिनमें मुख्यतः जातिगत गैर बराबरी के खिलाफ आवाज बुलंद की गई है। 'मूकनायक' के दूसरे संपादक ध्रुवनाथघोलप और डाक्टर अम्बेडकर के बीच विवाद होने के कारण उसका प्रकाशन अप्रैल 1923 में बंद हो गया। उसके चार साल बाद 3 अप्रैल 1927 को उन्होंने दूसरा मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। वह 1929 तक निकलता रहा। बाबा साहब अछूतों की कमजोरियों को भी ठीक–ठीक पहचानते थे और उसकी खुलकर आलोचना करते थे। उनके इस आलोचनात्मक विवेक की झलक हम 'बहिष्कृत भारत' के दूसरे अंक यानी 22 अप्रैल 1927 के अंक में प्रकाशित उनकी संपादकीय टिप्पणी में पा सकते हैं, 'आचार–विचार और आचरण में शुद्धि नहीं आएगी, अछूत समाज में जागृति और प्रगति के बीज कभी नहीं उगेंगे। आज की स्थिति पथरीली बंजर मनःस्थिति है। इसमें कोई भी अंकुर नहीं फूटेगा इसलिए मन को सुसंस्कृत करने के लिए पठन–पाठन व्यवसाय का अवलंबन करना चाहिए।'' आलोचनात्मक विवेक के समांतर डाक्टर अम्बेडकर ने दलितों के आरक्षण का सवाल जोर–शोर से उठाया था ताकि दलितों को ऊपर उठाया जा सके। 20 मई 1927 को प्रकाशित 'बहिष्कृत भारत' के चौथे अंक की संपादकीय में बाबा साहब ने जो लिखा उसके मुताबिक पिछड़े वर्ग को आगे लाने के लिए सरकारी नौकरियों में उसे प्रथम स्थान मिलना चाहिए।

3 जून 1927 को निकले 'बहिष्कृत भारत' के पांचवें अंक में अम्बेडकर ने आजकल के प्रश्न स्तंभ में एडिनवरो में भारतीय विद्यार्थियों के साथ भेदभाव पर कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की। 'बहिष्कृत भारत' में उन्होंने 'महार और उनका वतन' शीर्षक से चार किश्तों में संपादकीय टिप्पणियां

लिखी। 23 दिसंबर 1927 के अंक में 'बहिष्कृत भारत' की संपादकीय का शीर्षक है: 'अस्पृश्यों की उन्नति का आधार।' यानी मुख्यतया अस्पृश्यों की उन्नति के लिए ही बाबा साहब की पत्रकारिता संघर्षशील रही।

'बहिष्कृत भारत' के बाद 1928 में डाक्टर अम्बेडकर ने समाज में समता लाने के उद्देश्य से 'समता' नामक पाक्षिक पत्र निकाला। बाद में उसका नाम 'जनता' कर दिया गया और अंततः 1954 में पाक्षिक 'समता' का नाम बदलकर 'प्रबुद्ध भारत' कर दिया गया। 'प्रबुद्ध भारत' आरंभ से आखिर तक साप्ताहिक रहा। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता' और 'प्रबुद्ध भारत' में प्रकाशित अम्बेडकर की स्पर्शी संपादकीय टिप्पणियां भारत की समाज व्यवस्था से मुठभेड़ के रूप में देखी जानी चाहिए। डाक्टर अम्बेडकर किसी विषय पर तटस्थ पर्यवेक्षक की तरह नहीं लिखते थे, अपितु हर बहस में हस्तक्षेप करते हुए यथास्थिति बदलने का प्रयास करते थे। उन्होंने धर्म, जाति एवं वर्ण व्यवस्था की विसंगतियों की जहाँ गहरी छानबीन की, वहीं उस सामाजिक ढाँचे की परख भी की, जिसके अन्दर ये वर्ण व्यवस्था काम करती है। इस लिहाज से जाति–वर्ण व्यवस्था पर बाबा साहब का मूल्यांकन सटीक है इस दस्तावेज का मूल्य तब और बढ़ जाता है, जब पूरे परिदृश्य का जायजा व्यापकता और गहराई से लेते हुए सम्बन्धित सभी मुद्दों को उभारने की कोशिश की गई हो। इसीलिए अम्बेडकर का लेखन आज भी उतना ही प्रेरणास्पद एवं प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। बाबा साहब की पत्रकारिता हमें यही सिखाती है कि जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र, लिंग, वर्ग आदि शोषणकारी प्रवृत्तियों के प्रति समाज को आगाह कर उसे इन सारे पूर्वाग्रहों और मनोग्रंथियों से मुक्त करने की कोशिश ईमानदारी से की जानी चाहिए। इसी के समांतर मुख्यधारा के सभी पक्षों को दलित मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

अक्तूबर 1930 से नवंबर 1932 तक लंदन में आयोजित तीन गोलमेज परिषदों में डाक्टर अम्बेडकर ने भाग लिया। कांग्रेस द्वारा प्रथम परिषद का बहिष्कार किये जाने के बाद उन्होंने परिषद में घोषित किया कि वे ब्रिटिश राज के अधिपत्य में गुलामों सा जीवन–यापन करने वाले एक पंचमांश भारतीय जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसके पश्चात बाबा साहब के सहयोगियों ने 'जनता' पाक्षिक का प्रारंभ किया। देश की सामाजिक, राजनीतिक और पत्रकारिता के क्षेत्र में डाक्टर अम्बेडकर की भूमिका में लक्षणीय क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिला। प्रथम चरण में 'मूकनायक' के माध्यम से अछूतों की वेदनाओं को हुंकार मिला। दूसरे चरण में 'बहिष्कृत भारत' के माध्यम से दलितों की विभिन्न समस्याओं पर ऊहापोह किया गया। तीसरे चरण में 'समता' के माध्यम से उनकी समानता की आकांक्षाओं को स्वर मिला, वहीं चौथे चरण में 'जनता' द्वारा स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता की त्रिसूत्री के आधार पर हिंदू समाज में सम्मान के साथ सम्मिलित होने की मंशा जाहिर की गयी।

1935 में पहली बार डाक्टर अम्बेडकर ने धर्मांतरण के पर्याय का गंभीरता से विचार किया और इस संदर्भ में अपनी भूमिका को एक पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत किया। दलितों के उद्धार के लिए मानव संसाधन, पैसा तथा बौद्धिक क्षमता की नितांत आवश्यकता है और जब तक वे हिंदू धर्म में है, तब तक उन्हें इनका लाभ नहीं होगा, ऐसी उनकी धारणा थी। दलितों को बंधन मुक्त करवाकर उन्हें संगठित तथा सक्षम बनवाने के लिए धर्मांतरण की अपरिहार्यता का प्रतिपादन भी बाबा साहब ने किया।

स्वतंत्रता के पश्चात पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में बने पहले केंद्रीय मंत्रिमंडल में विधिमंत्री के रूप में डाक्टर अम्बेडकर का समावेश किया गया। साथ ही उनकी अध्यक्षता में संविधान का मसौदा बनाने वाली समिति का गठन किया गया। अपने अथक परिश्रम के बाद समिति ने ज्ञान, उत्कृष्टता, मानवतावाद, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित विशिष्ट मसौदा संविधानसभा में प्रस्तुत किया।

इस समय डाक्टर अम्बेडकर ने देशवासियों को चेताया कि नया संविधान लागू होने पर राजनीतिक क्षेत्र में हरेक व्यक्ति को एक मत का अधिकार प्राप्त होगा और उसका मूल्य समान होगा। किंतु सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में विद्यमान रचना के अनुसार विषमता कायम रहेगी। इस विसंगति के चलते हमारी लोकतांत्रिक संरचना के चरमराने की संभावना उन्होंने जताई।

1952 के चुनावों में डाक्टर अम्बेडकर और उनके सहयोगी उम्मीदवारों को पराजय का सामना करना पड़ा। इसके पश्चात उन्होंने राजनीति से संन्यास लेकर बौद्ध धर्म का पुनरुज्जीवन तथा प्रसार करने का निर्णय किया। बौद्ध धर्म के समानता पर आधारित तत्वों से प्रभावित बाबा साहब ने अक्तूबर 1956 में नागपुर में अपने हजारों अनुयायियों के साथ धम्मदीक्षा ग्रहण की। उनके धर्मांतरण के ऐतिहासिक निर्णय से समूचे देश में एक क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपात हुआ। किंतु लोग उनके उद्देश्यों को ठीक से समझ नहीं सके। इस कारण से उन्हें पुनःश्च आलोचना तथा आरोपों का सामना करना पड़ा। अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक वे अन्याय एवं विषमता के विरोध में जूझते रहे।

देश के करोड़ों असहाय, दलित तथा शोषित लोगों के मुख्य प्रवक्ता के रूप में इस क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले बाबा साहब ने क्रांतिकारी पत्रकारिता के नये पर्व का प्रारंभ किया। अस्पृश्यता, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता और अन्याय के कारण पीड़ित पिछड़े लोगों को उन्होंने अपनी ओजस्वी पत्रकारिता तथा असामान्य नेतृत्व के माध्यम से संघर्ष के लिए प्रेरित किया। साथ ही दलितों के विकास के संदर्भ में विभिन्न मुद्दों पर विचार. विमर्श करवाने हेतु डाक्टर अम्बेडकर ने अपने पत्रों का मंच उपलब्ध करवाया और उन्हें संगठित कर उनका समुचित मार्गदर्शन भी किया। इसके अलावा भारतीय संविधान की रचना करते समय भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को उन्होंने सुनिश्चित किया। अपने दूरदर्शी विचारों के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता की त्रिसूत्री के आधार पर नये समाज की रचना का समर्थन कर उन्होंने लोकाभिमुख तथा मूल्याधारित पत्रकारिता का आदर्श स्थापित किया। इस अतुलनीय योगदान के बल पर डाक्टर अम्बेडकर को देश के प्रमुख पत्रकार, बुद्धिजीवी तथा राजनेताओं में अग्रगण्य स्थान प्राप्त हुआ है और भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में भी अभिनव सामाजिक क्रांति के उद्‌गाता के रूप में उनका नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जायेगा।

भाषा संस्कृति की संजीवनी होती है। चूंकि भारतवासी एकता चाहते हैं और एक समान संस्कृति विकसित करने के इच्छुक हैं। इसलिए सभी भारतीयों का यह भारी कर्तव्य है कि वे हिंदी को अपनी भाषा के रूप में अपनाएं। कोई भी भारतीय, जो इस प्रस्ताव को भाषावार राज्य के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार नहीं करता, भारतीय कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

-बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय खंड-1 उप-पृष्ठ 178-179

बहुमुखी प्रतिभा के धनीः भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर

ललिता जोशी

भारत को संविधान देने वाले महान व्यक्तित्व ''भारत रत्न'' बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के एक छोटे से गांव में हुआ था। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के पिता का नाम श्री रामजी मालोजी सकपाल और माता का नाम श्रीमती भीमाबाई था। भीमराव अम्बेडकर के बचपन का नाम श्री रामजी सकपाल था। बाबा साहब के पूर्वज लम्बे समय तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में कार्य करते थे और उनके पिता ब्रिटिश भारतीय सेना की मउ छावनी में सेवारत थे। भीमराव के पिता शिक्षा के प्रति काफी सजग थे और अपने बच्चों की शिक्षा पर जोर देते थे।

1894 में भीमराव अम्बेडकर के पिता सेवानिवृत्त हो गए और उसके दो साल बाद इनकी माता का भी देहांत हो गया। अपने 14 भाई–बहनों में से सिर्फ अम्बेडकर ही स्कूल की परीक्षा में सफल हुए और तत्पश्चात बड़े स्कूलों से भी शिक्षा पाने में सफल रहे। भीमराव अम्बेडर ने अपने नाम रामजी सकपाल से सकपाल हटाकर अपने गांव अम्बावाड़े के नाम पर ही अपना नाम रामजी अम्बेडकर रख लिया।

बाबा साहब का जन्म महार जाति में हुआ था जिसे लोग अछूत और बेहद निचला वर्ग मानते थे। बचपन से ही बाबा साहब ने सामाजिक और आर्थिक रूप से गहरा भेद–भाव सहन किया। इन विषम परिस्थितियों और उनके पिता की शिक्षा के प्रति गहन रूचि के कारण बाबा साहब में शिक्षा के प्रति दृढ़ संकल्प का बीजारोपण कर दिया था और इसी बीजारोपण से उन्होंने राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर के सुप्रसिद्ध शैक्षणिक संस्थानों जैसे 'कोलंबिया विश्वविद्यालय' और 'लंदन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स' से शिक्षा प्राप्त की। वे स्वयं अपने कार्यों द्वारा अपनी शिक्षा को नए आयामों तक ले गए और इसी कारण वे एक विचारक के रूप में सदियों तक हम सब के समक्ष जीवंत रूप में सदैव उपस्थित रहेंगे।'

बाबा साहब का मानना था कि ''जीवन लम्बा होने की बजाय महान होना चाहिए'' और उनका यह भी मानना था कि. 'किसी भी समाज की प्रगति उस समाज की महिलाओं की प्रगति से आंकी जानी चाहिए' बाबा साहब का यह भी मानना था कि. 'प्रत्येक नागरिक अपने आप को सबसे पहले और सबसे अंत में भारतीय समझे ताकि राष्ट्रीय एकता कायम रहे।' जिस समय भारतीय समाज छूआछूत के दौर में था और समाज का एक वर्ग इस अभिशाप से जूझ रहा था तो उस दौरान बाबा साहब ने यह उद्घोष किया था कि 'अपनी दासता स्वयं मिटानी है। शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष इसके लिए मूलमंत्र हैं'।

बाबा साहब के इन वक्तव्यों को यहां प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह है कि बाबा साहब ने अपने हर कथन को मूर्त रूप दिया तथा संविधान द्वारा एक नये भारत के निर्माण का महान कार्य आरंभ किया। बाबा साहब के इन उद्गारों से उनके राष्ट्र, समाज, महिलाओं, शिक्षा व अस्पृश्यता के प्रति दृष्टिकोण स्वत ही स्पष्ट हो जाता है। बाबा साहब ने संविधान के निर्माण में अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं शिक्षा का परिचय सम्पूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। बाबा साहब के जीवन का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यता निवारण था और उन्होंने इस आंदोलन का शुभारंभ 20 जुलाई, 1924 को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना से आरंभ किया था और मानवाधिकारों की मांग भी की थी। बाबा साहब के कार्य इतने विशाल एवं व्यापक रूप लिए हुए हैं कि उसे इस छोटे से उद्गार में बता पाना असंभव–सा प्रतीत हो रहा है फिर भी हमारा

प्रयास है कि बाबा साहब के महत्वपूर्ण कार्यों की सूचना पाठकों तक पहुंचे, जोकि इस प्रकार हैः

1920 में 'मूक नायक' अखबार की शुरुआत की जिसमें अस्पृश्यों के सामाजिक और राजकीय संघर्ष की शुरुआत की।

1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसका उद्देश्य दलित समाज में जागरूकता उत्पन्न करना था।

1927 में महाड़ में पानी के लिए सत्याग्रह किया और यहां अस्पृश्यों के लिए यहां की झील से पीने के पानी पर लगी पाबंदी समाप्त हुई।

1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में अस्पृश्यों को प्रवेश देने के लिए सत्याग्रह किया।

1930 में लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि बन कर उपस्थित रहे।

सितम्बर, 1932 को महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर के बीच 'पूना पैक्ट' हुआ।

29 अगस्त 1947 को स्वतंत्र भारत के संविधान मसौदा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

14 अक्तूबर, 1956 को नागपुर में बाबा साहब ने अपने समर्थकों के साथ एक औपचारिक सार्वजनिक समारोह में बौद्ध धर्म ग्रहण किया।'

ये तो बाबा साहब के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों की एक छोटी–सी बानगी भर है। बाबा साहब महिला शिक्षा और अधिकारों के प्रति प्रतिबद्ध थे उनका विचार था कि 'किसी समाज या समुदाय की प्रगति उस समुदाय की महिलाओं की प्रगति से आंकी जानी चाहिए।' बाबा साहब की यह सोच उनकी प्रगतिशीलता एवं दूरदर्शिता की परिचायक है। जब अधिकांश देशों और भारत में भी महिलाओं की शिक्षा एवं अधिकारों को लेकर लोग उदासीन थे तब बाबा साहब की सोच में महिलाओं का शिक्षित होना कितना महत्वपूर्ण था यह उनके इस वक्तव्य से ही समझा जा सकता है। बाबा साहब का व्यक्तित्व कैसा था यह हम सबको मालूम ही है कि उन्होंने आजीवन शिक्षा, दलितों, महिलाओं एवं मजदूरों के समान अधिकारों के लिए संघर्ष किया और वे अपने इस संघर्ष में सफल भी रहे। भारत के संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष का कर्तव्य सफलतापूर्वक वहन करते हुए उन्होंने अपने इस दर्शन को संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में मूर्त रूप दिया। हमारे संविधान में यह लिखा गया है कि भारत के सभी नागरिकों को लिंग, जाति और रंगभेद से परे समान अधिकार एवं समान अवसर प्रदान किए जाते हैं। इसका श्रेय बाबा साहब को ही है।

बाबा साहब के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना 14 अक्तूबर, 1956 को नागपुर में घटित हुई जहां उन्होंने अपने समर्थकों के साथ एक औपचारिक सार्वजनिक समारोह में बौद्ध धर्म ग्रहण किया। अस्वस्थता और लंबी बीमारी के कारण इस महान व्यक्तित्व ने 6 दिसम्बर 1956 को दिल्ली स्थित अलीपुर के अपने निवास स्थान में अंतिम सांस ली। बाबा साहब को 1990 में देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

संदर्भ

भारत दर्शन
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डॉ. बी. आर. जाटव

भारतीय संविधान और डॉ. भीमराव अम्बेडकर

हरि प्रकाश सिंघल

26 नवम्बर, 1949 को 'भारतीय संविधान' बनकर तैयार हुआ था। भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सन् 1945 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ था उसके बाद भारत को सत्ता सौंपने का मसला खड़ा हो गया। 24 मार्च, 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड एटली ने ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों को भारत में राजनैतिक गतिरोध को रोकने तथा भारत को सत्ता सौंपने के उद्देश्य से भारत भेजा। इसे 'केबिनेट मिशन' कहा गया। जब केबिनेट मिशन ने संविधान सभा तथा अंतरिम सरकार की रूपरेखा संबंधी योजना की घोषणा कर दी थी। जिसमें अम्बेडकर के द्वारा रखी गई कथित दलितों के लिए मांगों की उपेक्षा की गई। जिसके फलस्वरूप उन्होंने संगठित होकर आंदोलन कर दिया। उसके बाद केबिनेट मिशन ने हिन्दू–मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व के आधार पर अंतरिम सरकार की रूपरेखा संबंधी योजना की घोषणा की थी–जिसमें 14 सदस्य थे। 5 कांग्रेसी सवर्ण हिन्दू, 1 कांग्रेसी दलित, 5 मुस्लिम और एक–एक पारसी, सिख व इसाई। हिन्दू.मुस्लिम मतभेदों के चलते इस योजना को स्वीकार नहीं किया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने पूना से अपना आंदोलन शुरू कर दिया और बताया कि दलितों के हितों की केबिनेट मिशन द्वारा पूर्णतः उपेक्षा की गई। बाद में ब्रिटिश भारत के अधीन प्रांतीय विधान सभाओं का चुनाव किया गया, जिसमें 296 सदस्यों को चुना गया। इसके बाद सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब बंगाल से 'जोगेन्द्र नाथ मंडल' ने डॉ. अम्बेडकर को बंगाल से चुनाव लड़ने के लिए आमंत्रित किया। डॉ अम्बेडकर के लिए यह चुनाव जीवन–मरण का सवाल बन चुका था। 20 जुलाई, 1946 को जब परिणाम घोषित हुआ तो सारा शहर नाच उठा तथा जय जयकार के नारे गूंज रहे थे क्योंकि अम्बेडकर एंग्लो इंडियन सदस्य, निर्दलीय दलित सदस्य और मुस्लिम लीग के सदस्यों की मदद से चुनाव जीत गए थे। डॉ. अम्बेडकर ने यह विजय दलित वर्ग की बताई तथा इसके लिए सबको धन्यवाद भी किया और कहा कि 'मैं रक्त की अंतिम बूंद तक अपने लोगों के लिए, उनके हितों के लिए उनके अस्तित्व के लिए काम करता रहूंगा। संविधान सभा में पहुंच जाने के बाद अम्बेडकर ने राष्ट्रीय घोषणा पत्र आदि तैयार करने में कांग्रेसियों के साथ मिलकर काम किया और साथ ही उन्होंने अपने काम से कई सदस्यों को प्रभावित भी किया। लेकिन कांग्रेस ने एक कुटिल चाल चल दी जिसके कारण अम्बेडकर को वहां से इस्तीफा देना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर ने इस विषय से संबंधित ब्रिटिश प्रधानमंत्री से मुलाकात की और उन्होंने कांग्रेस के द्वारा चली गई कुटिल चाल से अवगत कराया। ब्रिटिश सरकार ने इसे गंभीरता से लिया। तमाम दबावों के चलते कांग्रेस को डॉ. अम्बेडकर को संविधान सभा में बम्बई से चुनकर भेजना पड़ा। इसके अलावा 1946 के कार्यकाल में संविधान सभा के कुछ सदस्य जो उनके ज्ञान से परिचित हो गए थे वो उनके साथ काम करने के इच्छुक थे। डॉ. अम्बेडकर की पुस्तक ''स्टेट्स एंड मायनारिटीज'' जिसकी रचना उन्होंने संयुक्त गणराज्य के संविधान के रूप में की थी, इसकी प्रतियां भी संविधान सभा में सभी के पास पहुंच चुकी थी जिसे पढ़कर सभी उनके ज्ञान के कायल हो गए थे। दूसरी तरफ नेहरू किसी संविधान विशेषज्ञ की तलाश में थे। ऐसी स्थिति में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने 30 जून, 1947 को बम्बई के मुख्यमंत्री बी.जी.खेर को पत्र लिखकर संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर का चुनाव सुनिश्चित करने का निर्देश दिया।

इस पत्र में उन्होंने लिखा. ''अन्य बातों के अलावा हमने यह भी अनुभव किया कि संविधान सभा और विभिन्न समितियों, जिसमें डॉ. अम्बेडकर को नियुक्त किया गया था। वह कार्य बहुत ही अच्छा रहा तथा उनकी सेवाओं से स्वयं को वंचित नहीं कर सकते। मेरी प्रबल इच्छा है कि उन्हें संविधान सभा के लिए निर्वाचित कराएं, ताकि 14 जुलाई, 1947 से शुरू होने वाले अधिवेशन में निर्वाचित होकर संविधान संरचना में योगदान दे सकें। 29 अगस्त, 1947 को जब संविधान सभा ने संविधान–प्रारूप समिति का गठन किया था जिसमें डॉ. अम्बेडकर को प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में प्रारूप समिति के अध्यक्ष होते हुए बहुत मेहनत की, उनके पैरों में भी दर्द रहता था, उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था। उनके इस कार्य को देखते हुए 4 नवम्बर, 1948 को टी.टी. कृष्णामाचारी ने कहा कि ''मैं इस परिश्रम और उत्साह को जानता हूं, जिससे उन्होंने संविधान सभा का प्रारूप तैयार किया। संविधान सभा में सात सदस्य मनोनीत थे। उनमें से एक ने संविधान सभा से त्याग पत्र दे दिया, जिसकी पूर्ति कर दी गई। एक सदस्य का देहांत हो गया, उसका स्थान नहीं भरा गया। एक अमरीका चला गया और स्थान खाली रहा। एक अन्य सदस्य राजकीय कार्यों में व्यस्त रहा और उनका स्थान भी खाली रहा। एक या दो सदस्य दिल्ली से बाहर रहे और स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उपस्थित नहीं हो सके। इन सब कारणों से संविधान को बनाने का सारा भार डॉ. अम्बेडकर के कंधों पर आ पड़ा। इसमें मुझे संदेह नहीं कि जिस ढंग से उन्होंने संविधान तैयार किया है। उसके लिए कृतज्ञ हैं तथा यह प्रशंसनीय कार्य है। नेहरू ने भी उनकी संविधान संरचना में उनके योगदान की प्रशंसा करते हुए कहा था ''अक्सर डॉ. अम्बेडकर को संविधान निर्माता कहा जाता है क्योंकि उन्होंने बड़ी सावधानी और कष्ट उठाकर संविधान बनाया। उनका बहुत महत्वपूर्ण और रचनात्मक योगदान रहा है।'' 26 नवम्बर, 1949 को डॉ.अम्बेडकर ने भारतीय संविधान को 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन में देश को समर्पित कर दिया। इस दिन को ''संविधान दिवस'' के रूप में भी मनाया जाता है। गणतंत्र भारत में 26 जनवरी, 1950 को संविधान अमल में लाया गया।

इस अवसर पर ''डॉ. राजेन्द्र प्रसाद'' ने कहा था। ''सभापति के आसन पर बैठकर मैं प्रतिदिन की कार्यवाही को ध्यानपूर्वक देखता रहा और इसलिए प्रारूप समिति के सदस्यों विशेषकर डॉ. अम्बेडकर ने जिस निष्ठा और उत्साह से अपना कार्य पूरा किया, इसकी कल्पना औरों की अपेक्षा मुझे अधिक है। डॉ. अम्बेडकर को प्रारूप समिति में शामिल करने और उनका अध्यक्ष नियुक्त करने से बढ़कर कोई और अच्छा हम दूसरा काम न कर सके। उन्होंने अपने चुनाव को न केवल न्यायोचित ठहराया है, बल्कि उस काम में क्रांति का योगदान दिया है जिसे उन्होंने सम्पन्न किया है। ''निश्चित तौर पर बाबा साहब डॉ, अम्बेडकर ने संविधान बनाने में बहुत परिश्रम किया है।

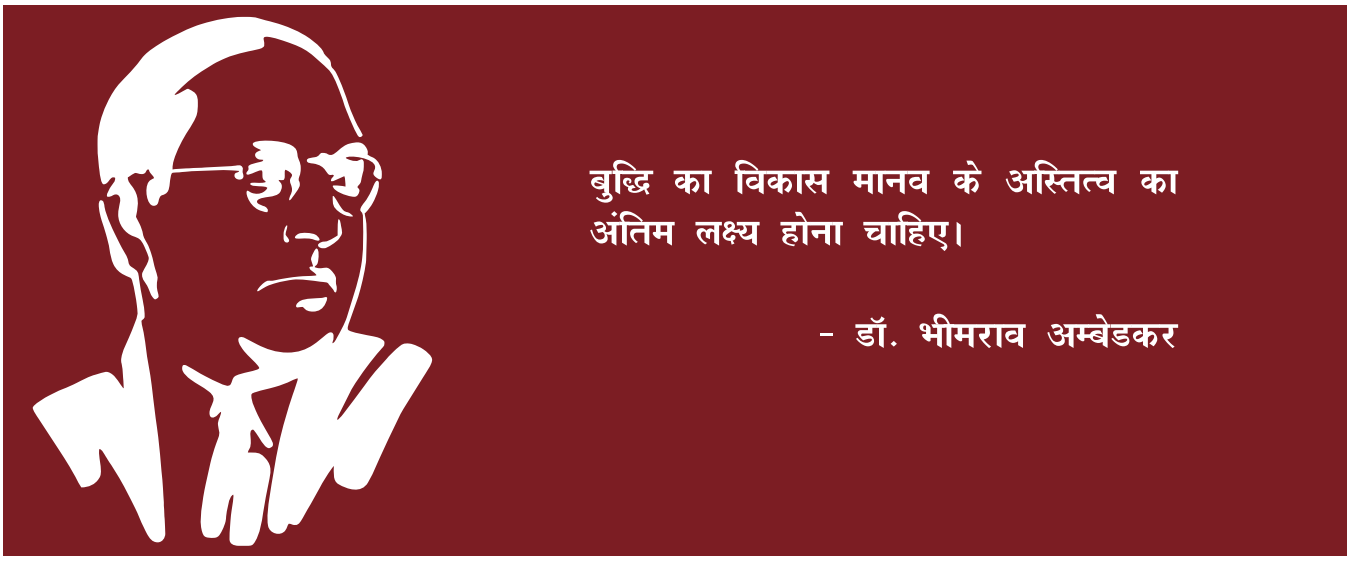

डॉ. अम्बेडकर जी के धार्मिक विचार

डॉ. बाबा साहब के बचपन से ही धार्मिक संस्कार थे। उनके पिता कबीरपंथी थे। सारी बौद्धिकता और विद्वता के बावजूद वे धार्मिक थे, परंतु उनकी धार्मिकता में कर्मकाण्ड और रूढ़ियों को स्थान नहीं था। 1917 से उनका सार्वजनिक जीवन शुरू हुआ। तब से लेकर 1935 तक वे हिन्दू धर्म में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे।

धर्म के उद्देश्य को समझाते हुए वे कहते हैं कि व्यक्ति के सद्‌गुणों का विकास यही सच्चे धर्म का अन्तिम उद्देश्य है। जिस कारण प्रजा का धारण होता है वही धर्म है। धर्म की इस व्याख्या से वे अपनी सहमति प्रकट करते हैं। प्रजा के कारण के लिए धर्म बंधुभाव, समता और स्वतंत्रता के सद्‌गुणों के संस्कार डाले, ऐसी अपेक्षा होती है। अपेक्षा ही नहीं, किसी भी धर्म की यही अहम जिम्मेदारी होती है।

धर्म की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं आपको फिर से यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं है।''

'बुद्ध और उसके धर्म का व्यक्तित्व' नामक एक लेख डॉ. बाबा साहब ने 1950 में लिखा था। लेख के आरम्भ में वे व्यक्ति के जीवन में धर्म की आवश्यकता के चार प्रमुख कारण स्पष्ट करते हैं..

- समाज की 'स्थिरता' और 'नियंत्रण' के लिए नीति की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी एक के प्रभाव में समाज रसातल को जा सकता है। इसलिए किसी भी समाज को धर्म की आवश्यकता होती है।
- धर्म अगर बनाये रखना हो तो उसे बुद्धिप्रामाण्यवादी होना चाहिये। विज्ञान बुद्धिप्रामाण्यवादी है।
- केवल 'नीति की संहिता' का अर्थ धर्म नहीं है। धर्म की नीति–संहिता में स्वतंत्रता, समता और बन्धुता इन मूलभूत तत्वों को मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।
- दरिद्रता को पवित्र मानने का आग्रह किसी भी धर्म को नहीं करना चाहिए। अथवा 'दरिद्रता' का उदात्तीकरण भी नहीं होना चाहिए।

उनके मतानुसार इन चारों की पूर्ति बौद्ध धर्म करता है। 1935 से 1956 तक के कालखण्ड में अम्बेडकर जी धर्ममंथन में डूबे रहे। दुनिया के प्रमुख धर्मों का वे अध्ययन कर रहे थे। प्रत्येक धर्म की सीमाओं से वे परिचित हो रहे थे। उनकी मेधावी प्रतिभा और तेजस्वी बुद्धिमत्ता को बौद्ध धर्म आकृष्ट कर रहा था। इस धर्म का अत्यंत बारीकी से अध्ययन कर उन्होंने अंततः इसी धर्म में दीक्षा लेने का निर्णय लिया। उनका यह निर्णय भावुकता से भरा हुआ नहीं था। बौद्ध धर्म का नया भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया। परम्पराग्रस्त, रूढ़िग्रस्त, जड़ और भ्रष्ट बौद्ध धर्म को शुद्ध करने का उनका प्रयत्न था और यह काम उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ किया। अन्य धर्मों के प्रति उनकी यह शिकायत थी कि ये धर्म अपरिवर्तनशील होने का दावा करते हैं। प्रचलित सभी धर्मों की नींव 'श्रद्धा' है। ईश्वरी कृपा प्राप्त करना और उसकी अवकृपा से बचना यह 'धर्ममार्ग' है। इसके सिवा बाकी सभी अधर्म और निषिद्ध माना गया है। 'परमेश्वर' और 'श्रद्धा' के सिवा 'धर्म' में किसी और बात को स्थान ही नहीं है। मनुष्य की बुद्धि, उसके विचार, चर्चा आदि को किसी भी धर्म ने मान्यता नहीं दी है। इस कारण ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में चर्चा ही नहीं की जा सकती। जिन्हें ईश्वर की कृपा प्राप्त है, उन्हें ही धर्म–चर्चा का अधिकार यहां प्राप्त है। इसी वृत्ति के कारण 'धर्मपीठ' तैयार होते हैं और इन धर्मपीठों में स्थित आचार्य महंत और ब्राह्मणों का राज्य शुरू हो जाता है।

बौद्ध धर्म के संबंध में उनके निष्कर्ष इस प्रकार के हैं: ''बुद्ध का धम्म परलोक के संबंध में नहीं है। इहलोक में ही उसका संबंध है। वह न स्वर्गवादी है, न नरकवादी है, वह पृथ्वीवादी है। वह धम्म व्यक्गित मोक्ष की बात नहीं करता, सामाजिक मुक्ति का संदेश देता है। यह धम्म निरीश्वरवादी,

अनात्मवादी, भौतिकवादी और बुद्धिवादी है। यह धम्म अपरिवर्तनीय नहीं है परिवर्तनवाद का खुला समर्थक है। अपने 45 वर्ष के धर्म प्रसार कार्य में खुद बुद्ध ने अपने धम्म में उसकी शिक्षा में उसके आचार–विचारों में, नियम–उपनियमों में सतत परिवर्तन किए हैं। अर्थात् बौद्ध धर्म विकासशील है। यह धम्म विचारशील है।''

इन अनेक विशेषताओं के कारण विश्व के अन्य धर्मों की तुलना में बौद्ध धर्म की मौलिकता को वे स्पष्ट करते जाते हैं। अन्य धर्मों की तुलना में बुद्ध धम्म आधुनिक, वैज्ञानिक निष्कर्षों पर, कसौटियों पर श्रेष्ठ सिद्ध होता है। आधुनिक युग की चुनौतियों को वह स्वीकार कर सकता है। बुद्धिवाद,सामाजिक सत्ता, बंधुता, स्वतंत्रता, समाजवाद, जनतंत्र आदि आधुनिक मूल्यों के आलोक में इस धम्म को सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा अम्बेडकरजी का दावा था। इस धम्म की उपर्युक्त शक्तियों से अपने अनुयायी परिचित हो जाएं इस उद्देश्य से उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ उन्होंने अंग्रेजी भाषा में लिखा है। इसके मूल में इतनी ही दृष्टि थी कि इस धम्म की जीवंतता और आधुनिकता को विश्व के सभी लोग जान लें। बौद्ध धम्म वैश्विक धर्म बने।

बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ को वे एक मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। उसका चरित्र महामानव का चरित्र नहीं एक मनुष्य का चरित्र है। एक ऐसे मनुष्य का जो मनुष्यमात्र को दुखों से मुक्त करना चाह रहा था। बौद्ध धर्म की विशेषता उसके 'संघ' में है। इस संघ में सभी को खुला प्रवेश था। इसी संघ को बुद्ध ने 'त्रिशरण' और 'पंचशील' दिया। समाज परिवर्तन के लिए भिक्खु बुद्ध ने संघ की आवश्यकता पर बल दिया। संघ स्वयंभू शासित थे। संपूर्ण समाज ही स्वयंभू शासित हो ऐसी बुद्ध की अपेक्षा थी। बुद्ध की विचार पद्धति और तर्कमीमांसा में शब्द प्रामाण्य, ग्रन्थ प्रामाण्य को कहीं पर भी स्थान नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान इस पर ही बुद्ध का तर्कशास्त्र खड़ा है। बुद्ध ने एक स्थान पर कहा है, 'मेरे शब्दों को प्रमाण न मानो। तुम्हारी बुद्धि अथवा अनुभव से जो बात जचती हो उसे ही सत्य मानो। इस विश्व में अंतिम और अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं है। परिवर्तन और सतत परिवर्तन यही सत्य है। डॉ. बाबा साहब बुद्ध के इन वाक्यों से अत्यधिक प्रभावित थे। दुनिया के और धर्म और धर्मग्रन्थ शब्दप्रामाण्य को महत्व देते हैं, परंतु बुद्ध ऐसा कोई दावा नहीं करते। अपने उत्तराधिकारी के रूप में वे अपने धम्म की ओर इशारा करते हैं। किसी भी प्रश्न पर अगर निर्णय लेना हो तो भिक्खु संघ में उसकी खुली चर्चा हो, ऐसा उनका आग्रह था। इस चर्चा में अगर सहमति न हो रही हो तो मतदान से निर्णय लिया जाये ऐसा उनका आग्रह था। जनतंत्र पर निष्ठा रखने वाले बाबा साहब को इसी कारण बौद्ध धर्म श्रेष्ठ लगा। जिन प्रश्नों के कारण व्यक्ति का विवेक कुंठित हो जाता, अंधश्रद्धा का आरम्भ होता है, ऐसों की चर्चा को ही बुद्ध ने वर्जित किया। ये प्रश्न हैं ..

- मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? कहां जाऊंगा? इन तीनों प्रश्नों की चर्चा उन्होंने बन्द कर दी।
- आत्मा–संबंधी सभी कल्पनाओं को उन्होंने 'बकवास' कहा। शरीर संवेदना, चेतना और अनुभव इनमें किसी को भी 'आत्मा' मानने से उन्होंने इन्कार किया।
- विश्व–विकास का आरम्भ किसी विशिष्ट क्षण में हुआ है यह कल्पना भी उन्होंने अस्वीकृत कर दी।
- ईश्वर ने मनुष्य की निर्मिति की अथवा ब्रह्मा के शरीर से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धांत को भी उन्होंने नकारा।
- आत्मा के अस्तित्व को भी उन्होंने नकारा।

''बुद्ध का धम्म व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजनिष्ठ है। बौद्ध दर्शन 'धर्म' अथवा रिलीजन' शब्द के अंतर्गत नहीं आता, वह 'धम्म' अथवा फिलॉसफी ऑफ रिलीजन है। बौद्ध धम्म ने 'नैतिकता' को सर्वाधिक महत्व दिया। यह 'नैतिकता, स्वतंत्रता, समता और बंधुता के संवर्धन के लिए ही होनी चाहिए। परिवर्तित समाज मन की विविध प्रवृत्तियों पर सम्यक नियंत्रण रखने का कार्य इस नैतिकता को करना है। डॉ. बाबा साहब इसी नैतिकता को 'धम्म' कहते हैं। (बुद्ध एंड हिज धम्मा) एक स्थान पर

इसी नैतिकता को उन्होंने जनतंत्र 'डेमोक्रेसी' कहा है।

अम्बेडकर के धर्म–विषय विचारों के उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वे धर्म को मनुष्य की उन्नति का एक साधन मात्र मानते थे। धर्म मनुष्य के लिए है अथवा मनुष्य धर्म के लिए है, ऐसा प्रश्न उछालते हुए वे इसका स्वयं उत्तर देते हैं, ''जो धर्म हमारी चिंता करता हो, हमें अवसर प्रदान करता हो, उसके लिए हम प्राण तक देने के लिए तैयार हैं। जो धर्म हमारी परवाह ही नहीं करता, उसकी परवाह हम क्यों करें। मनुष्य के लिए धर्म को वे अनिवार्य मानते हैं। धर्म उनकी दृष्टि में 'विशुद्ध नैतिकता' का दूसरा नाम है। युवकों की धर्म विरोधी वृत्ति से उन्हें दुख होता था। वे इस बात पर विश्वास रखते थे कि धर्म में व्यक्ति की आशा को, उसके परिश्रम और उसकी जिद को बनाये रखने की अद्‌भुत शक्ति होती है। विशेषतः गरीबों के जीवन में धर्म बहुत अहम् भूमिका निभाता है, ऐसी उनकी स्थापना थी। धर्म के कारण ही व्यक्ति निराशा से बाहर आ सकता है, आत्महत्या से विमुख हो सकता है, अधिक साहस से परिस्थिति के साथ संघर्ष कर सकता है, ऐसा उनका विश्वास था। एक ओर धर्म व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित करता है तो दूसरी ओर वह उसे भविष्य के प्रति आस्थावान बनाये रखता है। इन्हीं कारणों से धर्म को नकारना उनके लिए संभव नहीं था। दलित समाज को बौद्ध धर्म में प्रवेश करवाते समय उनका यह अटूट विश्वास था कि बौद्ध धर्म के श्रेष्ठ मूल्यों को दलित अपनायेंगे, प्रखर बुद्धिवादी, अनात्मवाद और स्वयंभू शासन की वृत्ति को स्वीकार करते हुए वे संगठित होंगे, संघर्ष करेंगे और अपनी यातनाओं से मुक्त हो जायेंगे। समाज जैसे–जैसे अधिक बुद्धिवादी होता जायेगा, वैसे–वैसे वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट होता जायेगा। ऐसी उनकी मान्यता थी।

साभारः पुस्तक– डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर। लेखकः डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

जिस तरह मनुष्य नश्वर है ठीक उसी तरह विचार भी नश्वर हैं। जिस तरह पौधे को पानी की जरूरत पड़ती है उसी तरह एक विचार को प्रचार-प्रसार की जरूरत होती है वरना दोनों मुरझा कर मर जाते हैं।

- डॉ. भीमराव अम्बेडकर

संविधान निर्माण में अग्रिम भूमिका

4 नवम्बर, 1948 को संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर ने संविधान का मसविदा पेश करते हुए कहा, ''संविधान मसविदा समिति सभा के 29 अगस्त, 1947 के प्रस्ताव द्वारा गठित हुई थी। सभा ने विभिन्न कमेटियां बनाई थीं। उनकी रिपोर्ट और सभा की बहस को ध्यान में रखकर एक मसविदा तैयार किया गया। इसमें 315 धाराएं तथा 8 अनुसूचियां हैं। दुनिया के किसी भी देश का संविधान आकार में इतना बृहद् नहीं है। जिन्होंने इसका सांगोपांग अध्ययन नहीं किया है उनके लिए इसके विशेष और महत्वपूर्ण मुद्दों को समझ पाना कठिन है। इसे जनता की राय जानने के लिए 8 महीने तक परिचालित किया गया और उनके समय–समय पर आये सुझावों का भी समावेश किया गया है। कुछ लोगों ने इसके प्रावधानों की आलोचनाएं की हैं। इसमें से कुछ आलोचना तो पूरी गैर जानकारी पर आधारित है। इन मसविदों को ठीक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके इसलिए मैं विभिन्न कमेटियों की रिपोर्ट भी सदन के अवलोकनार्थ प्रस्तुत करता हूं।''

उन्होंने संवैधानिक कानून विशेषज्ञों के दो प्रश्नों। किस पद्धति की सरकार और किस पद्धति का संविधान. का उत्तर देते हुए कहा, 'अमेरिकी संविधान की तरह भारत में भी प्रेसीडेंट ही सर्वोच्च होगा लेकिन अमेरिकी और भारतीय पद्धति भिन्न होगी, वहां प्रेसीडेंट सर्वोच्च होता है। हम संसदीय सर्वोच्चता की पद्धति स्वीकार करते हैं।'

जहां तक संविधान के स्वरूप के सिद्धांत का सवाल है संविधान एकात्मक और संघात्मक होते हैं। प्रथम में केन्द्रीय सत्ता की सर्वोच्चता होती है और अधीनस्थ सर्वोच्चता के साथ अधीनस्थ इकाइयां भी सर्वोच्च होती हैं। अर्थात संघात्मक व्यवस्था में दोहरी पोस्टिंग होती है। हमारे संविधान में संघात्मक व्यवस्था एकात्मक रूप में है...अमेरिका में दोहरी नागरिकता है। राज्यों को भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। हमने पूरे देश की एक ही नागरिकता स्वीकार की है। उन्होंने कहा, 'हमारा संविधान संघात्मक और एकात्मक दोनों है। आपात स्थिति लागू होने पर अथवा राज्यों में विशिष्ट स्थिति आने पर राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा राज्यों की हुकूमत अपने हाथ में ले सकते हैं। किंतु उसी तरह राज्यों को कुछ विशेष अधिकार मिले हैं जिनमें केन्द्र हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इसलिए संवैधानिक व्यवस्था के मामले में हमारा संविधान विश्व का अनोखा व अद्वितीय विधान है। कानून बनाने की शक्ति के मामले में आस्ट्रेलिया के विधान की तरह संसद और राज्यों के विधानमंडलों के कार्यों का बंटवारा भी है और समवर्ती सूची के विषय तैयार कर दोनों को कानून बनाने के अधिकार दिये गये हैं।

हमारी संघीय व्यवस्था दुनिया में अनूठी इसलिए भी है कि हमने कार्यपालिका, न्यायपालिका व विधायिका के क्षेत्रों का विधिवत बंटवारा किया है। राष्ट्र की एकता के लिए हमने मूलभूत मामलों में समानता दर्शायी है। (1) न्यायपालिका, (2) मूलभूत सिविल फौजदारी कानूनों की एकता, (3) एक अखिल भारतीय सिविल सेवा।

उन्होंने नीति निर्देशक तत्वों को संविधान में समाविष्ट किये जाने को अद्भुत उदाहरण बताते हुए कहा कि केवल आयरिश संविधान में इस तरह की बात है। उन्होंने इस अन्याय के समावेश का बचाव करते हुए कहा कि इसमें कानूनी बंदिशें भले न हों लेकिन यह इंस्ट्रूमेंट ऑफ इंस्ट्रक्शन है यह विधायिका और कार्यपालिका को इंस्ट्रक्शन है। जिसका स्वागत होना चाहिए। जहां कहीं भी सामान्यतः अच्छी सरकार, शांति और व्यवस्था धारक सरकार की बात हो वहां जरूरी है कि उसके सुचारू रूप से संचालन के लिए एक दिशा–निर्देश भी हो। इसमें लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप एक निर्देश तैयार किया गया है। इन निर्देशों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसा करने पर न्यायपालिका के समक्ष जवाबदेही होगी। वे शक्तियां जो संविधान के अनुसार सत्ता में होंगी इन निर्देशों की उपेक्षा करने पर जनता के प्रति जवाबदेह होगी। इसमें केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के अधिकारों के बीच एक संतुलन स्थापित किया गया है। इस संविधान के देशी रियासतों और केन्द्र के बीच संबंधों को लेकर होने वाली आलोचना का उत्तर देते हुए

उन्होंने कहा, 'हमने इन्हें अपनी सभा बनाने की छूट दी है। वे अपना संविधान बना लें, यद्यपि यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए मेरे पास कोई बचाव नहीं है।' यह स्थिति भारत के भविष्य के लिए चुनौती है और खतरनाक है। जब तक राज्यों के अधिकार के मामले में दोहरी व्यवस्था रहेगी यह राज्य के लिए ठीक नहीं है। कभी युद्ध वगैरह की स्थिति में राज्य की हालत खराब हो जायेगी। मौजूदा संविधान में इन देशी रियासतों को अपनी सेना भी रखने के अधिकार दिये गये हैं। इस प्रावधान से तो भारतीय संघ की एकता नष्ट हो सकती है और केन्द्रीय सत्ता ध्वस्त की जा सकती है। ड्राफ्टिंग कमेटी इस स्थिति से प्रसन्न नहीं थी। इस संदर्भ में संविधान सभा ही निर्णय करेगी क्योंकि सभा ने भी इन रियासतों से बात करने के लिए समझौता समिति बना रखी है और बहुत कुछ उनके समझौते पर निर्भर है। उन्होंने जर्मनी का उदाहरण देते हुए कहा, '1870 में विस्मार्क ने 25 रियासतों को मिलाया और अब वे एक देश, जाति और एक संविधान में बने। उन्होंने देशी रियासतों से पुरजोर अपील की कि वे भारतीय संघ में मिलकर संघ के राज्य जैसे बन जायें और भारतीय संघ को शक्तिशाली बनायें। वे मेरी अपील पर ध्यान देते हुए अपनी संविधान सभा बनाने के झंझट से मुक्त हों। हम किसी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं देते हैं। यद्यपि देश और लोग विभिन्न राज्यों और हिस्सों में बंटे रहेंगे। ऐसा प्रशासकीय सुविधा के लिए किया जा रहा है किन्तु देश एक ही संगठित ईकाई है। देश के सभी लोग एक ही छतरी में रहने वाले एक ईकाई हैं। इस काम को करने के लिए अमरीका को गृह युद्ध के दौर से गुजरना पड़ा। हम ड्राफ्टिंग कमेटी की ओर से इस बात को सदा के लिए दफन कर रहे हैं कि इस संघ में विलीन होने वाली कोई ईकाई कभी भी अलग नहीं हो सकती।'

डॉ. अम्बेडकर का उक्त भाषण भारत की एकता के लिए उनकी तड़प को दर्शाने के लिए काफी है। बाद में सभी सदस्यों ने डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत मसविदे की भूरि–भूरि प्रशंसा की। अंत में लगभग इसी रूप से इस मसविदे को स्वीकार किया गया केवल स्थानीय निकायों व ग्राम पंचायतों के बारे में जो उनकी दृष्टि थी उसकी लोगों ने निंदा की, किंतु उनके प्रबल आलोचकों को भी उनके संवैधानिक ज्ञान तथा मसविदे की कौशलपूर्व प्रस्तुति को स्वीकार करना पड़ा। डॉ. सन्थानम ने, एक संशोधन रखा, 'राज्य गांव पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और समय–समय पर स्वशासन की दृष्टि से उन्हें शक्ति और अधिकार देगा। 'इसके पक्ष में अनन्त शयनम् अयंगार, सेठ गोविन्ददास, टी प्रकाशक, स्वयं अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और कार्यवाही से ऐसा लगता है कि एन. जी. रंगा आदि सभी ने गांधीजी को उद्धृत करते हुए इस संशोधन को स्वीकार करने के लिए काफी दबाव पैदा किये तब जाकर डॉ. अम्बेडकर ने बिना किसी टिप्पणी के इस संशोधन को स्वीकार कर लिया। यह घटना संविधान सभा के लिए महत्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर ने बहुमत के आगे झुककर अपने विचारों और व्यक्त राय के खिलाफ पंचायती राज व्यवस्था से संबंधित प्रावधान को स्वीकार कर लिया।

इस तरह संविधान लागू होने के तीन वर्ष के भीतर न्यायपालिका का बटवारा हो जायेगा। इस विषय को उन्होंने नीति निर्देशक तत्वों में रखा और कहा कि बहुत समय से कांग्रेस पार्टी ऐसा मांग कर रही थी किन्तु जान–बूझकर ब्रिटिश सरकार कांग्रेस के प्रस्ताव पर अमल नहीं करती थी। हम लोग भी इसे तुरंत लागू करने की हालत में नहीं हैं। इसलिए नीति निर्देशकों में यह प्रावधान संविधान लागू होने के तीन वर्ष बाद करने की व्यवस्था की गयी।

साभारः पुस्तक– डॉ. भीमराव अम्बेडकर
व्यक्तित्व के कुछ पहलू
लेखकः मोहन सिंह

भारतीय संविधान और डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर

फैज़ानुल हक

डॉक्टर अम्बेडकर की प्रतिष्ठा एक अद्वितीय विद्ववान और विधिवेत्ता की थी जिस कारण जब, 15 अगस्त 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, कांग्रेस के नेतृत्व वाली नई सरकार अस्तित्व में आई तो उसने डॉक्टर अम्बेडकर को देश के पहले कानून एवं न्याय मंत्री के रूप में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। 29 अगस्त 1947 को, डॉक्टर अम्बेडकर को स्वतंत्र भारत के नए संविधान की रचना के लिए बनी संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। इस कार्य में डॉक्टर अम्बेडकर का बौद्ध संघ रीतियों और अन्य बौद्ध ग्रंथों का शुरुआती अध्ययन भी काम आया।

डॉक्टर अम्बेडकर एक संविधान विशेषज्ञ थे तथा उन्होंने लगभग 60 देशों के संविधानों का अध्ययन किया था। डॉक्टर अम्बेडकर को ''भारत के संविधान के पिता'' के रूप में मान्यता प्राप्त है। संविधान सभा में, मसौदा समिति के सदस्य टी.टी. कृष्णामाचारी ने कहा था, 'अध्यक्ष महोदय, मैं सदन में उन लोगों में से एक हूं, जिन्होंने डॉक्टर अम्बेडकर की बात को बहुत ध्यान से सुना है। मैं इस संविधान की ड्राफ्टिंग के काम में जुटे लोगों के काम और उत्साह के बारे में जानता हूं।'' उसी समय, मुझे यह महसूस होता है कि इस समय हमारे लिए जितना महत्वपूर्ण संविधान तैयार करने के उद्देश्य पर ध्यान देना आवश्यक था, वह ड्राफ्टिंग कमेटी द्वारा नहीं दिया गया। सदन को शायद सात सदस्यों की जानकारी है। आपके द्वारा नामित, एक ने सदन से इस्तीफा दे दिया था और उसे बदल दिया गया था। एक की मृत्यु हो गई थी और उसकी जगह कोई नहीं लिया गया था। एक अमेरिका में था और उसका स्थान नहीं भरा गया था और एक अन्य व्यक्ति राज्य के मामलों में व्यस्त था, और उस सीमा तक एक शून्य था। एक या दो लोग दिल्ली से बहुत दूर थे और शायद स्वास्थ्य कारणों ने उन्हें भाग लेने की अनुमति नहीं दी। इसलिए अंततः यह हुआ कि इस संविधान का मसौदा तैयार करने का सारा भार डॉक्टर अम्बेडकर पर पड़ा और इसके लिए हम उनके आभारी हैं। इस कार्य को प्राप्त करने के बाद मैं ऐसा मानता हूं कि यह निस्संदेह सराहनीय है।

ग्रैनविले ऑस्टिन ने 'पहला और सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज' के रूप में डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा तैयार भारतीय संविधान का वर्णन किया। 'भारत के अधिकांश संवैधानिक प्रावधान या तो सामाजिक क्रांति के उद्देश्य को आगे बढ़ाने या इसकी उपलब्धि के लिए जरूरी स्थितियों की स्थापना करके इस क्रांति को बढ़ावा देने के प्रयास में सीधे पहुंचे हैं।'

डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा तैयार किए गए संविधान के पाठ में नागरिकों के लिए नागरिक स्वतंत्रता की एक विस्तृत श्रंखला के लिए संवैधानिक गारंटी और सुरक्षा प्रदान की गई है, जिसमें धर्म की आजादी, छुआछूत को खत्म करना और भेदभाव के सभी रूपों का उल्लंघन करना शामिल है। डॉक्टर अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए व्यापक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए तर्क दिया और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्यों के लिए नागरिक सेवाओं, स्कूलों और कॉलेजों में नौकरियों के आरक्षण की व्यवस्था शुरू करने के लिए असेंबली का समर्थन जीता, जो एक सकारात्मक कदम था। भारत के सांसदों ने इन उपायों के माध्यम से भारत के निराश वर्गों के लिए सामाजिक–आर्थिक असमानताओं और अवसरों की कमी को खत्म करने की उम्मीद प्रदान की। संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर, 1949 को संविधान अपनाया गया था।

अपने काम को पूरा करने के बाद डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा, 'मैं महसूस करता हूं कि संविधान, साध्य है, यह लचीला है पर साथ ही यह इतना मजबूत भी है कि देश को शांति और युद्ध दोनों के समय जोड़ कर रख सके। वास्तव में, मैं कह सकता हूं कि अगर कभी कुछ गलत हुआ तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था बल्कि इसका उपयोग करने वाला मनुष्य अधम था।''

समान नागरिक संहिता

डॉक्टर अम्बेडकर समान नागरिक संहिता के पक्षधर थे और कश्मीर के मामले में धारा 370 का विरोध करते थे। डॉक्टर अम्बेडकर का भारत, आधुनिक, वैज्ञानिक सोच और तर्कसंगत विचारों का देश होता, उसमें पर्सनल कानून की जगह नहीं होती। संविधान सभा में बहस के दौरान, डॉक्टर अम्बेडकर ने समान नागरिक संहिता को अपनाने की सिफारिश करके भारतीय समाज में सुधार की अपनी इच्छा प्रकट की थी। 1951 में संसद में अपने हिन्दू कोड बिल के मसौदे को रोके जाने के बाद डॉक्टर अम्बेडकर ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। हिंदू कोड बिल में भारतीय महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की बात शामिल थी। इस मसौदे में उत्तराधिकार, विवाह और अर्थव्यवस्था के कानूनों में लैंगिक समानता की मांग की गयी थी। हालांकि प्रधानमंत्री नेहरू, कैबिनेट और कुछ अन्य कांग्रेसी नेताओं ने इसका समर्थन किया परन्तु राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद एवं सरदार वल्लभभाई पटेल समेत संसद सदस्यों की एक बड़ी संख्या इसके खिलाफ थी। डॉक्टर अम्बेडकर ने 1952 में बॉम्बे (उत्तर मध्य) निर्वाचन क्षेत्र में लोकसभा का चुनाव एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लड़ा पर वह हार गये। इस चुनाव में डॉक्टर अम्बेडकर को 1,23,576 वोट तथा नारायण सडोबा काजोलकर को 1,38,137 वोट मिले। मार्च 1952 में उन्हें राज्य सभा सांसद के लिए चुना गया और इसके बाद जीवनपर्यन्त वो इस सदन के सदस्य रहे।

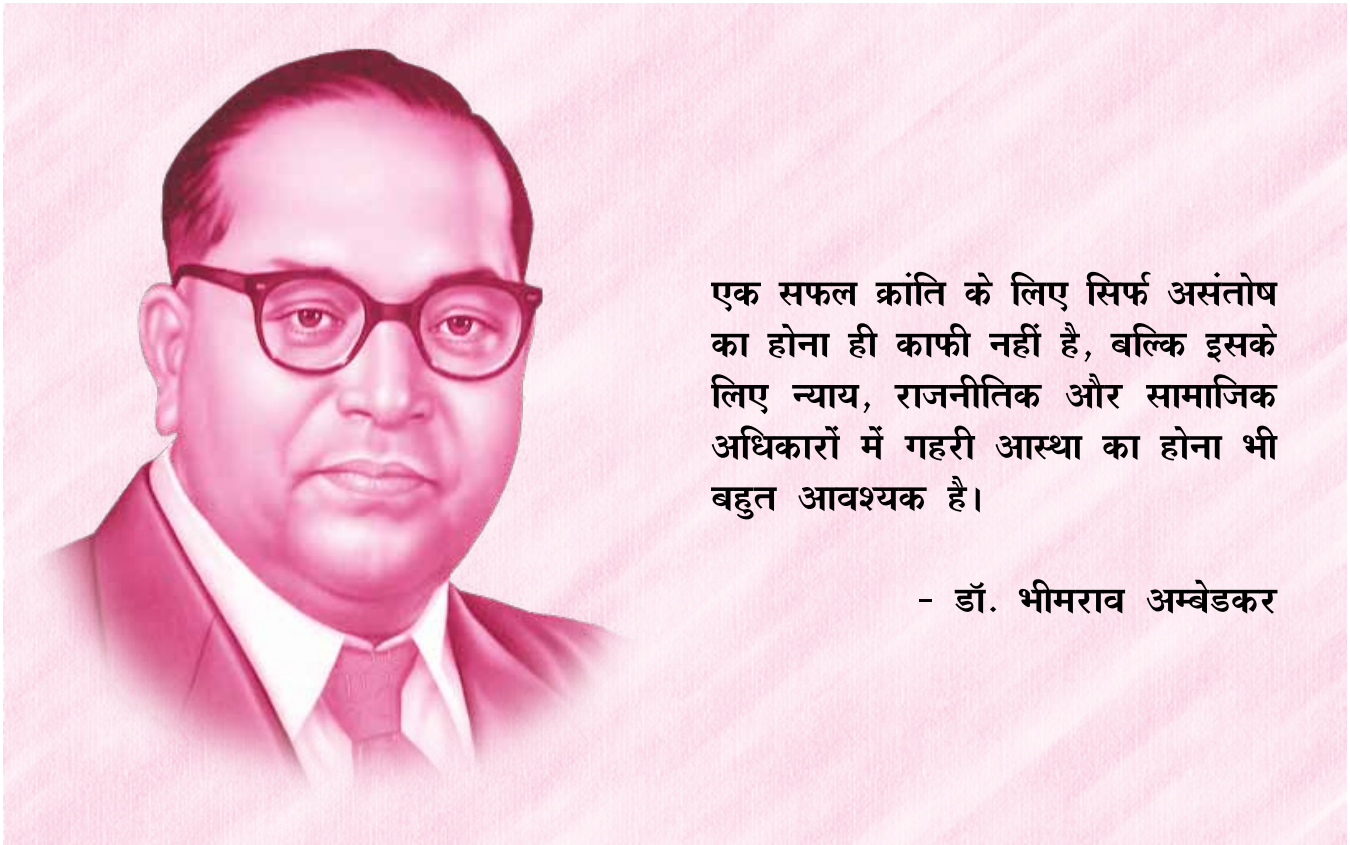

एक भारत श्रेष्ठ भारत

''आदि से अंत तक हम सिर्फ भारतीय हैं''

समीर वर्मा
शिलांग

संविधान निर्माता और महान समाज सुधारक बाबा साहब भीमराव रामजी अम्बेडकर का उक्त कथन देश की एकता–अखंडता को पूर्णता प्रदान करता है। आज हम जब 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की बात करते हैं तो मन में यह सवाल आना लाजिमी है, कि आजादी के इतने बरस बाद भी क्या भारत एक देश और श्रेष्ठ देश नहीं बना है? वैसे तो 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना वर्तमान सरकार के मुखिया प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की है जो एक अभियान है, देश को एकता के सूत्र में पिरोने का। श्री मोदी ने 31 अक्टूबर 2015 को सरदार वल्लभभाई पटेल के जन्म दिवस पर इस नयी पहल को शुरू करने की घोषणा की थी। इस योजना का उद्देश्य मौजूदा सांस्कृतिक संबंधों के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में एकता को बढ़ावा देना है। इसका उद्देश्य उन भारतीयों के बीच भी सम्बंधों को सुधारना है जो पूरे देश में अलग–अलग भागों में रह रहे हैं। भारत विश्वभर में अपनी एकता, शान्ति और सद्भाव के लिये जाना जाता है। इसलिये, ये पहले सरकार द्वारा शुरू किया गया वो प्रयास है जिससे पूरे देश में लोगों को एक–दूसरे से जोड़कर एकता, शान्ति और सद्भावना को बढ़ावा दिया जा सकेगा। इस कार्यक्रम के जरिये देश के 36 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों की समृद्ध संस्कृति तथा विरासत, खान–पान, हस्तकलाओं और रीति–रिवाजों को प्रदर्शित किया जा रहा है। प्रधानमंत्री ने आकाशवाणी से प्रसारित अपने 'मन की बात' कार्यक्रम में कहा भी था कि 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' योजना भारत को 'वन इंडिया सुप्रीम इंडिया' बनायेगा। इसे एक अच्छी पहल माना जाना चाहिए, इस अभियान के अंतर्गत सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा देने हेतु दो अलग–अलग राज्यों को जोड़ीदार बनाया गया है जिससे एक दूसरे को करीब से जाना समझा जा सकता है। इससे निश्चित तौर पर देश में आंतरिक रूप से व्याप्त सांस्कृतिक अंतर को पाटकर अलग–अलग राज्यों के लोगों के बीच आपसी अंतःक्रिया को बढ़ावा मिलेगा।

हम सब ने भारत की विविधता के सम्बन्ध में यह उक्ति जरूर सुनी होगी 'कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस में वाणी'। यही हमारी सभ्यता, संस्कृति की हकीकत है। इतनी विविधता शायद ही किसी देश की संस्कृति सभ्यता में हो। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे देश में आपसी भाईचारा अन्य पश्चिमी देशों से कहीं अधिक है जबकि हम तमाम अलग–अलग धर्म संस्कृति भाषा वासियों के देश के रूप में जाने जाते हैं। अगर पश्चिमी देशों की एकता अखंडता की बात की जाये तो, पश्चिमी विचारकों ने जो एक राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत की उसमें एक समान भाषा, जाति और धर्म को राष्ट्र निर्माण का प्रमुख आधार बताया है और ये कहा कि इसके अभाव में बने किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व टिकाऊ नहीं हो सकता। ऐसे विचारकों का मानना है कि वर्तमान का भारत एक देश न होकर अलग–अलग राष्ट्रों का एक समूह है जो किसी तरह से एक बना हुआ है। इसमें न तो कोई साझापन है और न ही कोई राजनीतिक और सामाजिक चेतना ही है जो एक राष्ट्र के रूप में इसकी पहचान बन सके। उन्हें यह बताना जरूरी है कि विविधता में एकता, भारत की प्रमुख विशेषता है। सही मायनों में भारत अपनी विविधता के संदर्भ में अनोखा राष्ट्र है। आदिकाल से ही हमारे राष्ट्र के लिए 'एकता' को सबसे बड़े हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया है। एकता के बल पर ही हमारे देश ने मुगलों से लेकर अंग्रेजों तक के शासन को खत्म किया था। भारत की आजादी के समय जिस तरह से सभी लोगों ने एकजुट होकर संघर्ष किया था और विजय हासिल की थी। यह भारत की एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है।

भारत में जाति, धर्म, पहनावा, बोली, संस्कृति, रीति–रिवाज, परंपरा में काफी विविधता होने के बावजूद भी हमारे देश की एकता की मिसाल दी जाती है। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। भौगोलिक दृष्टि से बात करें तो भारत इतना विशाल देश है कि इसका एक–एक राज्य यूरोप के कई देशों से बड़ा है। उत्तर में हिमालय पर्वत श्रंखला तो दक्षिण में हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर है। भारत में प्रमुख धर्म हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख, मुसलमान, ईसाई तथा पारसी के अलावा अनेक जनजातियां निवास करती हैं सभी मंदिर, मस्जिद, मठ, गुरुद्वारों, गिरिजाघरों का समान आदर किया जाता है ईद, दिवाली, दशहरा, क्रिसमस, बुद्ध जयंती, अम्बेडकर जयंती, महावीर जयंती सहित सैकड़ों पर्व त्यौहार सभी मिलजुल कर मनाते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि एक धर्म भाषा संस्कृति वाले देश ज्यादा तरक्की करते हैं उनके सामने पाकिस्तान प्रत्यक्ष उदाहरण है विभाजन के बाद पाकिस्तान ने इस्लामिक राष्ट्र के रूप में खुद को विकसित किया, उसके क्या हाल हैं वो सबके सामने है जबकि भारत ने खुद को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में विकसित किया। यहाँ हर राज्य की अपनी सांस्कृतिक परंपरा सभ्यता है। यह विभिन्नता और विविधता भारत को एक सुन्दर पारम्परिक और सांस्कृतिक देश बनाती है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और कच्छ से लेकर कोहिमा तक अनगिनत लोकगीत, संस्कार, संस्कृति और लोकगाथाएं हैं। देश में आपसी मेल–जोल इतना मजबूत है कि अनेकों अड़चनों, विरोधी ताकतों के बावजूद यहां एकात्मक भावना क्षीण नहीं हुई है। यहां धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक चेतना ने बराबर लोगों को एक सूत्र में बांधे रखा है।

आजादी के बाद हमारे महापुरुषों की सबसे बड़ी चिंता यह थी कि जातियों में बंटा भारतीय समाज एक राष्ट्र की शक्ल कैसे लेगा और आर्थिक और सामाजिक गैरबराबरी के रहते वह राष्ट्र के रूप में अपने अस्तित्व की रक्षा कैसे कर पाएगा? इस मामले में हमें बाबा साहब भीमराव रामजी अम्बेडकर का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने संविधान में समानता का अधिकार देकर इस खाई को पाट दिया। वो हमेशा से समानता पर विशेष बल देते थे। वह कहते थे' 'अगर देश की अलग–अलग जाति एक दूसरे से अपनी लड़ाई समाप्त नहीं करेंगी, तो देश एकजुट कभी नहीं हो सकता। यदि हम एक संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्म–शास्त्रों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए। हमारे पास यह आजादी इसलिए है ताकि हम उन चीजों को सुधार सकें, जो सामाजिक व्यवस्था, असमानता, भेदभाव और अन्य चीजों से भरी है जो हमारे मौलिक अधिकारों के विरोधी हैं। एक सफल क्रांति के लिए केवल असंतोष का होना ही काफी नहीं है बल्कि इसके लिए न्याय, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों में गहरी आस्था का होना भी बहुत आवश्यक है।' वो कहते थे 'मैं ऐसे धर्म को मानता हूं, जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सिखाए। संविधान का मसौदा पेश करते हुए अपने समापन भाषण में डॉ. अम्बेडकर ने भारत के भविष्य को लेकर स्पष्ट रूप से अपनी आशंकाएं भी व्यक्त कीं थी। उन्होंने कहा था 'क्या भारतीय अपने देश को अपने संप्रदाय से ऊपर रखेंगे या अपने संप्रदाय को देश से ऊपर रखेंगे? मैं नहीं जानता। किंतु इतना निश्चित है कि यदि हमारे देश में राजनीतिक दल अपने संप्रदाय को देश से ऊपर रखते हैं तो हमारी स्वतंत्रता दूसरी बार संकट में पड़ जाएगी और शायद सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। हम सबको दृढ़तापूर्वक इस संभावना का निराकरण करना चाहिए। हमें अपने रक्त की अंतिम बूंद के साथ अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए दृढ़ निश्चयी होना चाहिए। बाबा साहब चाहते थे कि भारत के लोग, तमाम अन्य पहचानों से ऊपर, खुद को सिर्फ भारतीय मानें राष्ट्रीय एकता ऐसे ही स्थापित होगी। राष्ट्र–निर्माण केवल सरकारों का ही दायित्व नहीं हो सकता है। नागरिकों को भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। अगर भारत को एक सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनना है, तो सबसे पहले इस वास्तविकता से रूबरू होना आवश्यक है कि हम सब मानें कि जमीन के एक टुकड़े पर कुछ या अनेक लोगों के साथ रहने भर से राष्ट्र नहीं बन जाता राष्ट्र निर्माण में व्यक्तियों का 'मैं' से 'हम' बन जाना बहुत महत्वपूर्ण होता है। ऐसे में 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' जैसे अभियान देश के मूल सिद्धांत तथा उसकी प्रमुख विशेषता विविधता में एकता को बनाए रखने में एक अहम् भूमिका निभाएंगे।

विषम परिस्थितियों में खिला कमल-अम्बेडकर

लवलीन निगम

व्यवसाय के आधार पर समुदाय संसार भर में रहे हैं। भारत में भी व्यवसाय के अनुसार वर्ग चले आ रहे हैं। परंतु अंतर यह रहा कि हमारे देश में व्यवसाय जन्म जन्मांतर में जाति बन गए। जो वर्ग जितना ही श्रम करके पेट भरता है उतना ही उसका सामाजिक जीवन निम्नश्रेणी में आता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ऐसे ही दीनहीन और मेहनतकश वर्ग में पैदा हुए थे। यह वर्ग शोषण की गहरी खाई में पड़ा सिसक रहा था। अपनी मेहनत लगन और साहस के बल पर ज्ञान और विद्वता की उन बुलंदियों पर पहुंच गए कि अचरज के अवतार बन गए। ऐसा लगता है कि आग की लपटों में कमल खिल गया हो।

समाज में व्याप्त ढोंग, पाखण्ड और धींगामुश्ती के खिलाफ अम्बेडकर ने रणभेरी बजाई और आज सामाजिक बराबरी का जो दीया टिमटिमाने लगा है उनमें अम्बेडकर के प्राणों का तेल जल रहा है। वैसे ऊंच–नीच और जातपात के पिशाच को धिक्कारने का बीजारोपण ईसा के पांच सौ साल पहले हो चुका था। महात्मा बुद्ध ने सामाजिक न्याय और समानता का उद्घोष कर दिया था। लेकिन समाज सुधारकों से जुड़ने के लिए अछूतों को न साहस था न विश्वास। परंतु मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलनों की लहर आई उसी दौरान कबीर, रैदास और दादू जैसे संत कवि उपेक्षित वर्ग के मन मानस पर छा गए। कारण यही था कि ये संत उनके बीच से निकलकर आए सामान्य जन थे। वे न राजघरानों से थे न तथाकथित उच्च वर्ग से संबंधित थे। अम्बेडकर स्वयं कबीर से प्रभावित थे। अंत में बौद्ध बन गए। आज भारत में आंदोलनों और प्रदर्शनों का बाजार गर्म है। किसी भी मुद्दे पर आंदोलन हो रहा हो उसमें डॉ. अम्बेडकर का फोटो अवश्य नजर आएगा। आंदोलनकारी और आंदोलन दोनों ही बाबा साहब की, उनके संविधान की, उनके लोकतांत्रिक विचारों की दुहाई देते हैं। इनमें आस्था से ज्यादा रक्षा कवच है। जिन संगठनों के पूर्व पुरुषों ने आजादी के पहले से लेकर उनके निर्वाण प्राप्ति तक उनके प्रति घृणा और वैमनस्य का जहर उगला यहां तक कि समाचार पत्रों के तत्कालीन व्यंग्य चित्रों में भी उन्हें चित्रित किया। लेकिन लोगों को यह गुमान भी न होगा कि 1916 में अम्बेडकर ने पी एच डी के लिए थीसिस दी थी जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारत में अंग्रेजों की आर्थिक नीति ब्रिटेन के उद्योगपतियों के पोषण के लिए बनाई गई है। इससे भारत का शर्मनाक तरीके से शोषण हो रहा है। यह अन्याय और उत्पीड़न का कुकृत्य है।

ब्रिटेन एक प्रजातांत्रिक देश रहा है वहां की संसद में अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित विचार विपक्षी दलों को सरकार की आलोचना करने के हथियार के रूप में मिले और उनका बारम्बार उल्लेख हुआ। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में जब गांधीजी ने भाग लेने से इन्कार कर दिया तो सम्मेलन का आयोजन ही खटाई में पड़ गया था क्योंकि गांधीजी की अनुपस्थिति में भारत का प्रतिनिधित्व संदिग्ध हो गया था। अम्बेडकर इस सम्मेलन के कुछ ही दिन पहले महाड नगर पालिका के चवदार तालाब से अछूतों के लिए पानी लेने का सफल और अप्रतिम आंदोलन चला चुके थे और नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश के लिए हजारों अछूतों को लामबंद करके जननेता बन चुके थे तो वे अंग्रेजों की निगाह में चढ़ चुके थे इसीलिए उन्हें गोलमेज सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधित्व के रूप में स्थापित किया गया।

बीसवीं शताब्दी में भारत का स्वाधीनता संग्राम चढ़ते सूरज की तरह जोर पकड़ता जा रहा था। 1929 में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दे दी थी और 1930 में इंग्लैंड में पहला गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया। तब तक अम्बेडकर अछूतों के एकछत्र नेता के रूप में स्थापित हो चुके थे। उनके लंदन रवाना होने से पहले उनके

सम्मान में एक समारोह आयोजित किया गया। अभिनंदन के जवाब में अम्बेडकर ने कहा था कि देश की आजादी का सवाल उनके लिए सबसे बड़ा मुद्दा होगा। वह इसके लिए जी–जान से लड़ेंगे। परंतु साथ ही अछूतों को शोषण के शिकंजे से आजाद कराने की शर्त भी रखेंगे। कांग्रेस ने पहले से ही इस सम्मेलन का बहिष्कार कर रखा था। अम्बेडकर कांग्रेस के पिछलग्गू तो थे नहीं, उनकी सोच में सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता ही नहीं, सामाजिक और आर्थिक समानता भी थी। इसलिए सम्मेलन में भाग लेने लंदन चले गए।

सर तेजबहादुर सप्रू भी उनके साथ सम्मेलन में भाग ले रहे थे। अम्बेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन का सशक्त ढंग से चित्रण किया और लंदन में दलित आंदोलन की भी विशद व्याख्या की। उनका कहना था कि अंग्रेजों के भारत आने से दासानुदास अछूतों की हालत में कोई सुधार नहीं आया है। क्या लाभ है इस सरकार का? उन्होंने अंग्रेजों को यह कहकर भौंचक्का कर दिया कि भारत में उनकी सरकार ने पूंजीपतियों और जमींदारों को शह दी है। दलित और मजदूर उनके शासनकाल में शोषित ही रहे। हम मजदूरों और किसानों का शोषण करने वाली सरकार नहीं चाहते। सरकार की बागडोर हमारे हाथों में होनी चाहिए।

भारत लौटने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्हें दूसरे गोलमेज सम्मेलन के लिए भी आमंत्रित किया गया। गांधीजी ने अम्बेडकर से भेंट का अनुरोध किया और यह भेंट 14 अगस्त, 1931 को हुई। गांधीजी ने कहा कि वह दलितों के लिए तब से चिंतित है जब अम्बेडकर पैदा भी नहीं हुए थे। कांग्रेस दलितों के उत्थान के लिए दस लाख रूपये खर्च कर चुकी है। आश्चर्य की बात है कि तुम हमारा विरोध कर रहे हो।

अम्बेडकर से दलील करना आसान न था। उन्होंने पलटकर गांधीजी से पूछा कि आपके दस लाख का प्रभाव क्या हुआ है? मुझे रूपये से नहीं परिणाम से गरज है। जब दूसरा 'गोलमेज सम्मेलन' लंदन में हुआ तो गांधीजी देर से पहुंचे। वहां दोनों के बीच फिर बातचीत हुई पर रिश्ता छत्तीस का ही निकला। पृथक मतदान के सवाल पर कांग्रेस और सवर्ण समुदाय में तीखी तिलमिलाहट थी। देशभर का वातावरण तनावपूर्ण हो गया था। कांग्रेस को लग रहा था कि पृथक मतदान हिंदुओं के दो टुकड़े कर देगा और इससे लीग को लाभ पहुंचेगा। अम्बेडकर पर बेइंतहा दबाव डाला गया। गांधीजी ने आमरण अनशन का ऐलान कर दिया। ऐसी विकट परिस्थितियों में घिरकर अम्बेडकर को अपनी मांग वापस लेनी पड़ी।

दरअसल, इस खेल में बड़े–बड़े दिग्गज भिड़ रहे थे। जिनके साथ पूरे मध्यम सवर्ण वर्ग, पूंजीपति और समाचारपत्रों की शक्ति थी। अम्बेडकर तो खाली हाथ थे। उनके अनुयायी भी कौन थे। बेबस, बेसहारा, कंगाल। क्या कर लेते वे? अम्बेडकर हार गए, पर मैदाने–जंग में सह सवार की तरह ही गिरे। इतना साबित हो चुका था कि उन्होनें सजी सजाई सेना के दांत खट्टे कर दिए।

'पूना पैक्ट' के बाद 1937 में चुनाव होने थे। सभी दलों ने अपनी अपनी कमर कस ली थी। अम्बेडकर ने स्वतंत्र पार्टी बनाई और मैदान में कूद पड़े। कांग्रेस ने एड़ी–चोटी का जोर लगाया पर अम्बेडकर को पराजित न कर पाई।

सन् 1938 में 'बंबई धारा सभा' में औद्योगिक विवाद बिल पर उन्होंने कहा कि यह बिल मजदूरों के अधिकारों पर कुठाराघात है। उनका कहना था, 'हड़ताल और स्वतंत्रता का अधिकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।'' उसी साल 7 नवंबर को उन्होंने मजदूरों की हड़ताल आयोजित की। साम्यवादी इस बार डॉ. अम्बेडकर के साथ थे।

नवंबर 1939 में कांग्रेस सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। अम्बेडकर का आरोप था कि 'पूना पैक्ट' लागू हो जाने के बावजूद प्रशासन में दलित जातियों का प्रतिनिधित्व न के बराबर है। वह अछूतों के हित को सर्वोपरि मानते थे। 1942 में जब 'क्रिप्स मिशन' भारत आया तो उन्होंने एम. सी. राजा के साथ मिलकर दलितों को नस्ली और मजहबी अल्पसंख्यक मानने पर जोर दिया।

जुलाई 1942 में अम्बेडकर वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम सदस्य बनाए गए। हम सादे शब्दों में श्रममंत्री भी कह सकते हैं। तभी उन्होंने 'शिडयूल्ड कास्ट फैडरेशन' भी बनाई। अम्बेडकर मई 1946 तक श्रम सदस्य रहे और इस बीच मजदूरों के हित में अनेक फैसले किए गए। 'कैबिनेट मिशन' के सामने उन्होंने मांग की कि अनुसूचित जातियों के लिए अलग मतदान प्रणाली की व्यवस्था की जाए और उन्हें पूरा संरक्षण दिया जाए।

(शेष पृष्ठ 65 पर)

'नए भारत' के निर्माण के लिए जापान से बहुत कुछ सीख सकते हैं हम

संजीव शर्मा
भोपाल

जापान के ओसाका में पिछले दिनों हुए जी–20 शिखर सम्मेलन में हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी शामिल हुए थे और उन्होंने महज दो दिन में 18 देशों के राष्ट्र प्रमुखों से मुलाकात कर द्विपक्षीय संबंधों को और एक कदम आगे ले जाने का दायित्व निभाया। खास बात यह है कि ये राष्ट्र प्रमुख अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प, रूस के प्रमुख ब्लादिमीर पुतिन, जापान के शिंजो अबे और ऐसे ही तमाम बड़े नेता थे जिनका अपना व्यस्ततम कार्यक्रम था। इस सम्मलेन को आकाशवाणी के भोपाल संवाददाता ने कवर किया था। हालाँकि इन यात्राओं में इतना वक्त नहीं मिल पाता कि आप किसी देश/शहर को मनमाफिक तरीके से देख–समझ सकें लेकिन यहीं मीडिया का पेशा सहयोगी बनकर कम समय में ज्यादा देखने/जानने/समझने का नजरिया देता है। यही कारण है कि रिपोर्टिंग के उत्तरदायित्वों के बीच समय में इस इलाके को अपने मोबाइल और किस्सों में कैद करने का प्रयास किया। आइए, जानते हैं कैसा है जापान और वहां के शहरः

भोपाल के श्यामला हिल्स और दिल्ली में रायसीना हिल्स की तरह के पहाड़ी इलाके सफाई में देश के सबसे स्वच्छ शहर इंदौर से भी आगे और परिवहन व्यवस्था में मुंबई से कई गुना व्यवस्थित मेट्रो–बस–टैक्सियां, सड़कों पर सुकून से साईकिल चलाते महिला–पुरुष और हर अजनबी का हल्की मुस्कराहट से स्वागत करते लोग ये ओसाका है। जापान का दूसरा सबसे बड़ा शहर। ओसाका (Osaka) का अर्थ ही है 'बड़ी सी पहाड़ी और ढलान'। जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है कि अपने इन्हीं उतार चढाव के कारण ओसाका हमें नई दिल्ली का सा आभास देता है।

अपनी यात्रा पर कुछ लिखने की शुरुआत किसी शहर के परिचयात्मक उल्लेख से? यह बात कई लोगों को शायद रास न आए लेकिन ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि कम से कम वे लोग भी जापान के ओसाका शहर को और इसके महत्व को समझ सकें जिनके लिए जापान का मतलब बस टोकियो है और वह भी हमारी 'लव इन टोकियो' सरीखी फिल्मों के जरिये मिले ज्ञान से या फिर हिरोशिमा–नागासाकी बमबारी की घटना के सन्दर्भ में... जापान को पहचानते हैं।

खुद सोचिए, जापान जैसा तकनीकी संपन्न और विकसित देश यदि दुनिया की 20 महाशक्तियों की मेजबानी का गौरव टोकियो से इतर अपने किसी शहर को देता है तो जाहिर सी बात है कि वह शहर अपने आप में खास होगा और जब बात ओसाका शहर की हो तो मामला खासमखास हो जाता है।

ओसाका वास्तव में जापान का एक बड़ा बंदरगाह शहर और वाणिज्यिक केंद्र है। जब हम जापान के कंसाई अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से बाहर निकले तो एक ओर जापानियों के स्वभाव की तरह शांत और विशाल समुद्र था तो दूसरी ओर घर और कल–कारखाने। हवाई अड्डे की लंबाई चौड़ाई का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि यहाँ एक गेट से दूसरे गेट तक जाने के लिए भी ट्रेन का सहारा लेना पड़ता है। एक और

खास बात यह है कि हवाई अड्डे से ओसाका शहर तक का लगभग पूरा सफर समुद्र के ऊपर बने फ्लाईओवर पर ही करना पड़ता है। इसे मानव निर्मित सबसे बड़ा द्वीप भी कहते हैं क्योंकि इसके जरिये यहाँ समुद्र का बेहतर उपयोग भी हो रहा है।

यह शहर अपनी आधुनिक वास्तुकला, नाइट–लाइफ, ऊँची–ऊँची इमारतों, रौशनी से नहाई सड़कों और लजीज स्ट्रीट फूड के लिए भी जाना जाता है। ओसाका दुनिया के अग्रणी शहरों में शामिल है और वैश्विक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैसे तो ओसाका जापान के केंद्र में स्थित है और यहाँ के अहम महानगरों और जिलों में से एक है लेकिन यह अपने आप में एक प्रान्त है जो लगभग 33 शहरों तथा 9 कस्बों में विभाजित है। ओसाका प्रान्त की आबादी लगभग 80 लाख है और यहाँ तकरीबन 2 लाख विदेशी नागरिक हैं जिनमें लगभग 3 हजार भारतीय हैं। वैसे ओसाका शहर की आबादी भी तकरीबन 18 लाख है।

हम यहाँ जून माह के आखिरी दिनों में थे और तब भी यहाँ के लोग गर्मी से बचने के लिए हाथ में बैटरी से चलने वाला छोटा सा पंखा लेकर घर से निकलने लगे थे। हालाँकि तापमान 26 से 27 डिग्री के बीच था और जापानियों के हिसाब से गर्मी शुरू हो रही थी। उन्हें क्या पता कि हम 45 डिग्री तापमान में भी घर से बाहर रहने वाले देश से आये हैं और 27–28 डिग्री तापमान तो हमारे लिए ठण्ड में रहता है। वैसे यहाँ लोग बताते हैं कि ओसाका में ठंड आम तौर पर कम पड़ती है और जनवरी के सबसे ठंडे महीने में भी तापमान 9.3 डिग्री सेल्सियस रहता है। बारिश का मौसम जून से जुलाई तक और गर्मियों में अधिकतम तापमान 33 डिग्री सेल्सियस तक जाता है। कुल मिलाकर ओसाका के जरिये हम जापान की जीवनशैली, आधुनिकता, विकास और विरासत को काफी हद तक समझ सकते हैं।

आर यू सिंपल वेजीटेरियन या हिन्दू वेजीटेरियन

अब बात दिल्ली से ओसाका की लगभग 10–12 घंटे की यात्रा की। कैथी पैसिफिक एयरलाइन्स के विमान में खाना परोसते हुए एयर होस्टेस ने पूछा– यू आर वेजीटेरियन? मेरे हाँ कहते ही उसने तत्काल दूसरा

सवाल दागा– विच टाइप आफ वेजीटेरियन मीन्स सिंपल वेजीटेरियन या हिन्दू वेजीटेरियन? अपनी लगभग ढाई दशक की नौकरी में यह सवाल चौंकाने वाला था क्योंकि अब तक तो शाकाहारी का एक ही प्रकार अपने को ज्ञात था। अब शाकाहार भी हिन्दू–मुस्लिम टाइप होता है इसकी जानकारी जापान यात्रा के दौरान ही मिली। खैर मैंने बताया कि हिन्दू वेजीटेरियन तो उसने कहा कि आपको 20 मिनट इंतजार करना होगा क्योंकि मुझे आपके लिए खाना पकाना पड़ेगा ! अब सोचिए विदेशी विमान में कोई विदेशी व्योमबाला (एयर होस्टेस) कहे कि मैं आपके लिए खाना बनाकर लाती हूँ तो दिल में लड्डू फूटना स्वाभाविक है। लगभग 20–25 मिनट के इंतजार के बाद वह बटर में बघारी हुई खिचड़ी, चने की दाल और रोटी के नाम पर ब्रेड के टुकड़े लेकर हाजिर हुई। उसने भरसक प्रयास किया था कि खाना स्वादिष्ट रहे और अपन ने भी दबाकर खा लिया ताकि उसे भी महसूस हो कि खाना स्वादिष्ट ही था। खैर इस एक किस्से से यह तो साफ हो गया था कि जापान में शाकाहार के लिए संघर्ष करना पड़ेगा और दूसरा यह कि यात्रा पर रवानगी से पहले इष्ट मित्रों की बात सही लग रही थी जो उन्होंने अपने और अपनों के अनुभव के आधार पर बताई थी कि जापान में तुम्हें उपवास करना पड़ सकता है।

अब जब मैदान में कूद पड़े तो फिर जंग से क्या डरना इसलिए जो जैसा मिलेगा–काम चला लेंगे, के अंदाज में मन बना लिया अब निश्चित ही आप सभी के मन में यह सवाल उछल रहे होंगे कि फिर वहां क्या खाया तो सबसे पहले तो सुन और जान लीजिए कि हमने वहां शाही पनीर, दाल मक्खनी, रसगुल्ला, गुलाब

जामुन, खिचड़ी, सोन–पापड़ी, आलूबोंडा, पोहा, उत्पम और इडली सहित वो सब कुछ खाया जो यहाँ भारत में खाने को मिलता है और उतना ही स्वादिष्ट क्योंकि 'मोदी है तो मुमकिन है।'

जी हाँ, इसमें जरा भी गलत नहीं है क्योंकि जापान में प्रधानमंत्री श्री मोदी के कारण ही यह मुमकिन हुआ। दरअसल हमारे प्रधानमंत्री ठहरे हम से ज्यादा शाकाहारी इसलिए जापान के जिस होटल में हम लोग ठहरे थे, उसने भारत से खासतौर पर रसोइए बुलाए थे और जब रसोइए भारतीय थे तो स्वाद भी भारतीय था और अंदाज भी, लेकिन जापान में खाने का मामला इतना सीधा भी नहीं था क्योंकि इस कहानी का दूसरा हिस्सा भी है जिसमें जरूर जापान में शाकाहारी खाने के संकट का अहसास होता है। दरअसल होटल में तो भारतीय रसोइए की मेहरबानी से शाकाहारी भोजन मिल गया लेकिन अंतरराष्ट्रीय मीडिया सेंटर में तो दुनियाभर के लोगों का ध्यान रखा गया था इसलिए वहां शाकाहार और विशेष तौर पर हिन्दू शाकाहार (!) कहीं पीछे रह गया। मीडिया सेंटर में अपना खाना तो दूर अपनी चाय (वही दूध–शक्कर और पत्ती की जुगलबंदी से भरपूर खौलने के बाद तैयार) के लिए भी तरसना पड़ा। वैसे तो जापान में वीआईपी मेहमानों को 24 प्रकार की चाय उपलब्ध थी जिसमें कई अबूझ नामों के बीच हमारी दार्जिलिंग चाय और आइस टी जैसे कुछ जाने माने नाम भी शामिल थे लेकिन वही अपनी असल कड़क–खौलती चाय नहीं थी। चाय के अलावा कॉफी के भी दर्जन भर प्रकार थे जिनमें ओसाका के स्थानीय ब्रांड के अलावा '20 देशों के 20 दानें' (20 beans of 20 countries) जैसी उत्तम किस्म की कॉफी भी थी लेकिन दिक्कत यहाँ भी दूध की थी और बिना दूध के कड़वी कॉफी को हलक से नीचे उतारना अपने लिए तो किसी सजा की तरह है। हालाँकि यहाँ कॉफी के एक प्रकार कॉफी लैटे ने मदद की क्योंकि इसमें पर्याप्त दूध होता है और इस तरह कुछ हद तक चाय–कॉफी का संकट दूर हुआ।

जब पनीर समझकर सुअर सेंडविच खा गए!!!

दुनियाभर के पत्रकारों के लिए ओसाका में बने इंटर–नेशनल मीडिया सेंटर में एप्पल सेंडविच और पाइन–एप्पल पेटिस पर हाथ साफ करते हुए हमारे एक पत्रकार साथी ने पनीर–क्रीम सेंडविच का बड़ा सा पीस मुंह में ठूंसते हुए कहा–बहुत ही जोरदार है, आप भी लीजिए! अपन ठहरे लकीर के फकीर... हर डिश को समझकर–पढ़कर खाने वाले, इसलिए उनकी सलाह पर अमल से पहले एक चक्कर लगाकर उस सेंडविच का नाम तलाशा तो उस पर जो लिखा था उसका मतलब पूछने पर पता चला कि वह सेंडविच सुअर के मांस की है!! अब उन पत्रकार मित्र का हाल मत पूछिये क्योंकि तब तक वे आधी से ज्यादा सेंडविच हलक से नीचे उतार चुके थे और अब न उगलते बन रहा था और न ही निगलते।

हालाँकि, इसमें उस बेचारे की भी कोई गलती नहीं थी क्योंकि यदि मैं आपसे कहूँ कि सुशी, साशिमी, टेम्पुरा, याकीतोरी, उडोन, सोबा, कैसेकी, सुकीआकी, सुकमोनो अचार और मिसो सूप... इन नामों को सुनकर कुछ समझ आया.. तो आप भी आश्चर्य से पलकें झपकाते रह जाएंगे क्योंकि जब मुझे जापान जाने के बाद भी समझ नहीं आया तो आप खाली नाम पढ़कर कैसे समझ सकते हैं... चलिए इस पहेली को आसान बनाते हैं। दरअसल ये सभी नाम जापान के सबसे लोकप्रिय और लजीज व्यंजनों के हैं और बड़ी संख्या में तमाम देशों के लोग इनका स्वाद चखने के लिए जापान जाते हैं। जी–20 देशों के महारथियों को भी ये और इनके साथ दर्जनों अन्य व्यंजन परोसे गए थे। व्यंजन तो छोड़िये, दुनिया के इन सबसे ताकतवर मुल्कों के प्रतिनिधियों के लिए 100 से ज्यादा प्रकार के शेक, 24 प्रकार की चाय, 8 प्रकार की काफी, दर्जन भर से ज्यादा प्रकार की बीयर, 17 प्रकार की वाइन, 12 तरह के साफ्ट ड्रिंक, 30 प्रकार की देशी मदिरा–शोचु परोसी गयी। शोचु गन्ना, शकरकंद, ज्वार, चावल जैसे कई अनाज और फलों से बनती है। तकरीबन दौ सौ से ज्यादा व्यंजनों और ड्रिंक्स की सूची

में मुझे बस चावल, दार्जिलिंग टी, आइस टी, काफी जैसे कुछ नाम ही समझ आए या अपने से नजर आए।

वैसे, शायद कम ही लोग जानते होंगे कि जापानी भोजन दुनिया में काफी लोकप्रिय है और इसका कारण यह है कि पारंपरिक जापानी खाने में पाँच नियमों को ध्यान में रखकर विविधता और संतुलन पर जोर दिया जाता है। इन नियमों के अंतर्गत खाने में पांच रंगों (काला, सफेद, लाल, पीला और हरा), खाना पकाने की पांच तकनीकों (कच्चा भोजन, ग्रिलिंग, स्टीमिंग, उबालना और तलना के साथ–साथ पांच स्वाद (मीठा, मसालेदार, नमकीन, खट्टा और कड़वा) का खास ध्यान रखा जाता है। यहाँ तक कि सूप और चावल बनाते समय भी इन नियमों का पालन किया जाता है। इसके अलावा ताजी और उच्च गुणवत्ता वाली मौसमी कच्ची सामग्री का इस्तेमाल और नफासत के साथ परोसने के कारण भी जापानी खान–पान के मुरीद बढ़ रहे हैं।

अब यदि आप हिन्दू वेजीटेरियन (जैसा कैथी पैसिफिक एयरलाइन्स में पूछा गया था) जैसे किसी खूंटे से नहीं बंधे हैं तो जापान में आपकी जीभ के लिए भरपूर गुंजाइश है जो मछली–मटन–चिकन से आगे बढ़कर सुअर, गाय और सी फूड में ऑक्टोपस–केकड़े और कई प्रकार के कीड़े मकोड़े का भी स्वाद ले सकती है। ऐसा भी नहीं है कि शाकाहारियों के लिए जापान में भूखे मरने की नौबत आ सकती है क्योंकि ब्रेड–बटर तो सामान्य रूप से हर जगह उपलब्ध है। फिर तमाम नुडल्स, जूस, फल का आनंद भी लिया जा सकता है। अब तो अनेक भारतीय रेस्तरां यहाँ खुल गए हैं जो आपको भारतीय स्वाद में भारतीय खाना परोस रहे हैं और कई जापानी भी इस खाने के दीवाने हैं। यहाँ तक कि कुछ होटलों में पहले से बता दिया जाए तो जैन भोजन भी मिल जाता है इसलिए यदि जापान जाने का मन बना लिया है तो बेखौफ और बेझिझक जाइए क्योंकि दाल–चावल–रोटी तो घर में मिल ही जाती है लेकिन जब देश से बाहर आये हैं तो सुशी, साशिमी, टेम्पुरा, याकीतोरी का भी लुत्फ उठाया जाए क्योंकि ये सब थोड़ी हमारे देश में आसानी से मिलेंगे।

साईकिल है जापानियों की सेहत का राज!!

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि बढ़िया सूट–बूट पहने कोई व्यक्ति साईकिल चला रहा हो या कोई महिला साल–दो साल के बच्चे को लेकर साईकिल पर बाजार करने या ऑफिस जाने को निकली हो, वो भी बेखौफ–बिंदास–बेझिझक!.. हमारे देश में कोई ऐसा करेगा तो शायद दूसरे दिन अखबारों में उसकी फोटो छप जाए लेकिन जापान में यह आम बात है। ओसाका में बड़ी संख्या में महिला/पुरुष/युवा/बच्चे सभी बड़े आराम से साईकिल पर घूमते नजर आते थे और वहां के लोगों से बातचीत में पता चला कि पूरे जापान में साईकिल के प्रति इसी तरह का प्रेम है।

न गाड़ियों की कर्कश चिल्लपों, न बेतहाशा भागते लोग एवं वाहन और न ही रेड लाइट पर हमारे जैसी चीख–पुकार सब कुछ सुकून/शांति/आराम और सम्मान से सम्मान पैदल यात्रियों का और सम्मान साईकिल सवारों का। जापान साईकिल की सवारी के मामले में भले ही दुनिया में नीदरलैंड, डेनमार्क और जर्मनी जैसे देशों से पीछे हो लेकिन शायद हम से बहुत आगे है। हमारे देश में दुनिया भर में कुल साईकिल उत्पादन का 10 फीसदी हिस्सा बनता है लेकिन साईकिल चलाना हमें गंवारा नहीं है। जापान के सिर्फ ओसाका शहर में ही 10 लाख से ज्यादा साईकिल हैं जबकि आबादी हमारी दिल्ली तो दूर, भोपाल जैसी ही मतलब 18–20 लाख के आसपास है। यदि हम ओसाका की तुलना भोपाल से करें तो साईकिल को लेकर मानसिकता साफ जाहिर हो जाती है. भोपाल में साईकिल चलाने के लिए आम लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए स्मार्ट साईकिल सर्विस शुरू की गयी थी। अब तक इसके लिए महज 65 हजार लोगों ने ही रजिस्ट्रेशन कराया है और प्रतिदिन औसतन 1200 लोग ही साईकिल चलाते हैं। दरअसल

साईकिल चलाने के लिए मानसिकता चाहिए और हमारे यहाँ तो साईकिल गरीबी की पहचान है। अब भले ही मोटापे से मुक्ति, तोंद से छुटकारे और डाक्टर की सलाह पर मन मारकर साईकिल चलाने लगे हैं लेकिन वे भी बस पार्क या घर के आसपास तक ही सीमित हैं तभी तो जब कोई सांसद/विधायक साईकिल पर संसद/विधानसभा पहुँच जाता है तो वह खबर बन जाता है जबकि जापान जैसे देशों में यह सामान्य बात है।

जापान में हर व्यक्ति दिनभर में औसतन 15 प्रतिशत यात्राएँ साईकिल से ही करता है और यकीनन जापानियों की छरहरी काया का राज भी यही है। ओसाका में मुझे तो कोई तोंद वाला और बेढब काया वाली महिला नजर नहीं आयी। अब आप कह सकते हैं सूमो पहलवान भी तो जापानी हैं लेकिन वह खास है और यहां हम जापान के सामान्य लोगों की बात कर रहे हैं। हाल के वर्षों में यहां 10 लाख से अधिक बाइक (साईकिल) हर साल बेची जाती हैं। जापान में मोटरसाईकिलों के विकल्प के रूप में साईकिल का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। बहुत सारे लोग ट्रेन स्टेशनों पर सवारी करने के लिए उनका उपयोग करते हैं। आजकल अधिक से अधिक जापानी ट्रैफिक जाम और भीड़ वाली ट्रेनों से बचने के लिए साईकिल चला रहे हैं। हर जगह साईकिल खड़ी करने के लिए बाकायदा साईकिल स्टैंड बने हुए हैं. माल में, ऑफिसों में, आम बाजारों में, फुटपाथ पर, बस स्टाप पर सभी जगह आधुनिक साईकिल स्टैंड हैं। लोग नियम से साईकिल पार्क करते हैं और जेबरा क्रासिंग पर लोग लालबत्ती होने का इंतजार नहीं करते बल्कि साईकिल और पैदल यात्रियों को सुकून और शांति से निकलने देते हैं। वाहनों की लाइन होने के बाद भी कोई हार्न बजा–बजाकर पूरे इलाके को सर पर नहीं उठाता बल्कि आगे बढ़ने के लिए चुपचाप अपनी बारी का इंतजार करता है।

और अंत में सबसे सुखद अहसास यहाँ लड़कियां और महिलाएं अपने मन मुताबिक कपड़े पहनकर मनचाहे समय तक पैदल और साईकिल पर घूमती हैं लेकिन उन पर कोई फब्ती नहीं कसता, कोई आंख फाड़ फाड़कर नहीं देखता, कपड़ों की आड़ लेकर कोई बलात्कार नहीं करता और उन्हें नारीत्व को लेकर कोई शर्म का अहसास नहीं कराता बस यहीं हम बहुत पीछे हैं और शायद कभी जापान की बराबरी भी न कर पाएंगे।

जापान में एफिल टावर और पेरिस!!!

जापान में एफिल टॉवर या पेरिस और न्यूयार्क का नजारा... सुनकर आश्चर्य होता है न, मुझे भी हुआ जब बताया गया कि ओसाका में एफिल टॉवर है !! बस फिर क्या था हमने ओसाका पहुंचकर सबसे पहला काम एफिल टॉवर देखने का किया। जब वहां पहुंचे तो एफिल टावर तो नहीं उसकी प्रतिकृति जरूर मिली लेकिन आकर्षण और लोकप्रियता के मामले में उससे एक कदम भी पीछे नहीं। दरअसल, ओसाका का सबसे बड़ा आकर्षण यहाँ के शिनसेकाई (Shinsekai) इलाके में स्थित यह सुटेनक्कु टॉवर (Tsutenkaku Tower) है। इसे ओसाका का एफिल टावर कहा जाता है और हम समझने के लिए इसे दिल्ली के इण्डिया गेट और जनपथ मार्केट का मिला जुला रूप कह सकते हैं। जापानी शब्द सुटेनक्कु का मतलब स्काई रूट टॉवर है और यहाँ सुबह से लेकर रात तक स्थानीय और हम जैसे विदेशी पर्यटकों का जमावड़ा लगा रहता है। इसके कारण इस इलाके की रौनक, सुन्दर–रंग बिरंगी बनावट, सस्ता सामान मिलना और जापान से जुड़े स्मृति चिन्ह मिलने का सर्वप्रमुख स्थान होना है।

जब इस टावर के बारे में जानकारी जुटाई तो पता चला कि मूल टावर का निर्माण 1912 में हुआ था। मूल टॉवर के शीर्ष को पेरिस के एफिल टॉवर के समान ही बनाया गया था। 64 मीटर ऊंचा यह टावर उस समय एशिया की दूसरी सबसे बड़ी संरचना थी। 1943 में आग लगने से यह बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया इसलिए इसे यहाँ से हटा दिया गया था। बाद में, स्थानीय लोगों ने इसी स्थान पर नए टॉवर के निर्माण के लिए अभियान चलाया और तब जाकर 1956 में मौजूदा टावर अस्तित्व में आया। अब 103 मीटर ऊँचें, इस स्मारक को आर्किटेक्ट ताचू नितो ने बनाया था, जिन्होंने टोक्यो टॉवर भी डिजाइन किया था।

टॉवर की 4 और 5 वीं मंजिल तक जाकर पर्यटक ओसाका शहर की स्काई लाइन और पूरे शहर के विहंगम दृश्य का आनंद ले सकते हैं। इसके लिए 500 येन या तकरीबन 400 रुपए टिकट लगती है। टॉवर में एक संग्रहालय भी है जहाँ ओसाका, इस इलाके और

जापान की कला संस्कृति पर केन्द्रित भरपूर भंडार है। टॉवर को जब रात में रोशन किया गया है तो यहाँ पूरा इलाका रंगबिरंगी रोशनी से सराबोर हो जाता है। यहाँ लोग बताते हैं कि टावर की रोशनी मौसम के साथ रंग भी बदलती है, साथ ही टॉवर पर लगी घड़ी जापान में सबसे बड़ी है।

शिनसेकाई (Shinsekai) इलाके की भी अपनी एक अलग कहानी है। बताया जाता है कि इसे ओसाका प्रीफेक्चर अर्थात ओसाका संभाग में एक मनोरंजन शहर के रूप में डिजाइन किया गया था, और मूल रूप से इसे न्यूयॉर्क और पेरिस शहरों की रंगीनियत और रूमानियत देने का प्रयास किया गया है। शिनसेकाई का शाब्दिक अर्थ भी है–नई दुनिया और अपनी आधुनिक छवि के कारण यह क्षेत्र वाकई ओसाका के लोकप्रिय स्थानों में से एक है।

शिनसेकाई क्षेत्र के चारों ओर आपको स्थानीय शुभंकर बिलिकेन (Billiken) की मूर्तियाँ और चित्र लगे दिखेंगे और बड़ी संख्या में लोग इन्हें खरीदते भी हैं। बिलिकेन को जापान में गुड लक का प्रतीक या अच्छी किस्मत देने वाला देवता माना जाता है इसलिए कहा जाता है कि बिलिकेन की मूर्ति के पैर छूने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

ओलंपिक खेलों की मशाल थामने का सपना हुआ सच!!

लगता है मुझे यहाँ के हैप्पीनेस शुभंकर 'बिलिकेन' की दुआएं मिल गयी हैं तभी तो सालभर पहले और यहाँ तक कि ओलंपिक खेलों की आधिकारिक तौर पर मशाल यात्रा शुरू होने के पहले ही ओलंपिक मशाल को हाथ में लेने का अवसर मिल गया। खिलाडियों ही नहीं, खेलों से दूर रहने वालों के लिए भी ओलंपिक खेलों की मशाल थामना गौरव की बात होती है। मैं भाग्यशाली हूँ कि मुझे मशाल थामने के साथ–साथ ओलंपिक शुभंकरों के साथ तस्वीर लेने का मौका भी मिल गया। दरअसल, जी–20 शिखर सम्मेलन के दौरान जापान ने यहाँ आने वाले विदेशी मेहमानों के लिए एक विशाल प्रदर्शनी भी लगायी थी। इस प्रदर्शनी में ओलंपिक मशाल, शुभंकर और खेलों के आयोजन में सहभागी बनने वाले रोबोट सहित तमाम चीजें उनके वास्तविक रूप–रंग–आकार और प्रकार में प्रदर्शित की गयी थीं।

जापान की राजधानी टोक्यो में 24 जुलाई से 9 अगस्त 2020 तक ओलंपिक खेल होंगे और इसके ठीक बाद 25 अगस्त से 6 सितम्बर के बीच पैरा ओलिम्पक खेलों का आयोजन होगा। एक तरह से इन खेलों का काउंट–डाउन शुरू हो गया है। आपको जानकर हैरानी होगी कि टोक्यो दो बार ओलंपिक खेलों की मेजबानी करने वाला एशिया का पहला शहर है। वहीं, जापान में चौथी बार ऑलंपिक खेलों का आयोजन हो रहा है।

गुलाबी–सुनहरे रंग की ओलंपिक मशाल को जापान के मशहूर डिजाइनर तोकुजिन योशीओका ने डिजाइन किया है। मशाल की डिजाइन यहाँ बहुतायत में मिलने वाले चेरी फूल से प्रेरित है। चेरी, अब हमारे देश में शिलांग सहित पूर्वोत्तर के कई शहरों में फूलने लगी है। हालाँकि जापान जैसी विविधता अभी हमारे देश में तो नहीं मिलती लेकिन इसके रंग यहाँ जरूर बिखरने लगे हैं और मेघालय की राजधानी शिलांग में तो जापान की तर्ज पर अब बाकायदा 'चेरी ब्लोसम' जैसे आयोजन भी होने लगे हैं।

इन ओलंपिक खेलों का आधिकारिक शुभंकर मिराइतोवा है। जापानी कलाकार रियो तानिगुची द्वारा निर्मित इस शुभंकर को दो हजार से ज्यादा शुभंकरों के बीच से एक प्रतियोगिता के माध्यम से चुना गया। मिराइतोवा का नाम जापानी शब्दों 'मिराई' और 'तोवा' को मिलाकर रखा गया है, जिसका अर्थ 'उम्मीदों भरा भविष्य', वहीं पैरा ओलंपिक खेलों के शुभंकर का नाम सोमिटी है जिसका अर्थ है 'शक्तिशाली'।

इन ओलंपिक खेलों की एक अन्य खूबी यहाँ खेलों में हाथ बंटाने वाले रोबोट होंगे। ये भविष्य केन्द्रित (फ्यूचरिस्टिक) रोबोट न केवल खेलों में एथलीटों और दर्शकों का स्वागत करेंगे बल्कि खेलों के आयोजन स्थलों तक पहुँचने में भी सहायक बनेंगे। जापान इन खेलों के दौरान चार प्रकार के रोबोट की सहायता ले रहा है।

ओसाका कैसल– जापानी वास्तुकला का एक सुंदर वसीयतनामा

ओसाका कैसल या ओसाका महल निश्चित रूप से जापान में सबसे प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में से एक है। यह जापान के तीन सबसे प्रमुख महलों में से एक है। लगभग 450 साल पुराना यह पाँच मंजिला महल देश के सबसे अधिक और सबसे प्राचीन दर्शनीय रचनाओं में शामिल है। ओसाका कैसल को हम पारंपरिक जापानी वास्तुकला का एक सुंदर वसीयतनामा कह सकते है। महल के अंदर प्रत्येक मंजिल पर ओसाका के व्यापक इतिहास को कलाकृतियों के माध्यम से प्रतिबिंबित किया गया है। स्थानीय लोगों के मुताबिक सदियों से यह महल कई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटनाओं का मंच रहा है। ओसाका कैसल अपनी विशाल आकार वाली पत्थर की दीवार के लिए भी प्रसिद्ध है। बताया जाता है कि इसके निर्माण में लाखों की संख्या में बड़े पत्थरों का उपयोग किया गया है।

यहाँ के इतिहास पर नजर डालें तो ओसाका कैसल का निर्माण 1583 में जापान में तमाम कबीलों की एकता के पुरोधा टॉयोटोमी हिदेयोशी (Toyotomi Hideyoshi-1536 - 1598) ने किया था लेकिन 1615 के गृह युद्ध के दौरान यह जल गया। इसे तब टोकुगावा बाकुफु (Tokugawa Bakufu-1603 - 1867) के शासनकाल के दौरान फिर से बनाया गया। इस महल और आग के बीच कुछ अजीब सा रिश्ता है तभी तो यह महल बार–बार आग का शिकार बनता रहा और फीनिक्स पक्षी की तरह पुनः नवनिर्मित होता रहा है। बताया जाता है

कि 1665 में बिजली गिरने के कारण इस महल को फिर काफी नुकसान पहुंचा। इतना ही नहीं, एक बार फिर बने इस महल में 1868 में फिर आग लग गई। बार–बार आग लगने की घटनाओं के कारण इसके फिर से निर्माण का इरादा त्याग दिया गया लेकिन ओसाका के लोगों की प्रबल इच्छाओं के कारण, 1931 में इसे फिर से सजाया–संवारा गया। तब से यह महल बिना किसी क्षति के ओसाका का गौरव गान बन गया है और बार–बार जलने/नष्ट होने के बाद भी यह भव्य महल आज भी अपनी वैभवशाली विरासत को समझाने और दिखाने में कामयाब है। कहा तो यह भी जाता है कि प्रारंभिक काल में लकड़ी से बने इस महल की आंतरिक साज–सज्जा सोने की थी।

ओसाका कैसल की सुन्दरता में चार चाँद इसके आसपास बना पार्क लगा देता है। लगभग 10 लाख वर्गमीटर में फैला ओसाका कैसल पार्क भी 1931 में बनाया गया था और यह पार्क चेरी ब्लॉसम फूलने के दौरान दुनियाभर के पर्यटकों को अपनी ओर खींचता है। ओसाका कैसल का एक अन्य आकर्षण, इसके आसपास बनी गहरी खाई है। इसमें चलने वाली रंग–बिरंगी नावों के जरिये भी यहाँ के प्राकृतिक वैभव से रूबरू हुआ जा सकता है। ओसाका कैसल परिसर में नौका विहार के दौरान दिल्ली के पुराने किले में बोटिंग करने जैसा लगता है, हालाँकि यहाँ वाहनों का शोरगुल नहीं है जो दिल्ली में किसी भी पर्यटन स्थल का सबसे कड़वा सच है।

एक महान व्यक्ति एक प्रख्यात व्यक्ति से एक ही बिंदु पर भिन्न है कि महान व्यक्ति समाज का सेवक बनने के लिए तत्पर रहता है।

- डॉ. भीमराव अम्बेडकर

एक छत के नीचे पूर्वोत्तर दर्शन मेघालय का डॉन बास्को म्यूजियम

समीर वर्मा
शिलांग

यदि आपको एक ही स्थान पर पूर्वोत्तर के सभी राज्यों के समाज उनकी संस्कृति खानपान के बारे में आसानी से जानकारी मिल जाये तो आप जरूर ऐसी जगह जाना पसंद करेंगे। प्राकृतिक रूप से पूर्वोत्तर के सबसे खूबसूरत राज्य मेघालय की राजधानी शिलांग में स्थित डॉन बास्को म्यूजियम ऐसा ही स्थान है जहाँ आपको समस्त पूर्वोत्तर राज्यों की जानकारी मिल जाएगी। इस संग्रहालय में आप मानव विकास की शुरुआत के साथ ही पूर्वोत्तर की आदिवासी सामाजिक संस्कृति के दर्शन बेहद करीब से कर सकते है। पर्यटक यहां पूर्वोत्तर राज्यों से एकत्रित किए गए शिल्पकृति, परिधान, हस्तशिल्प, सजावट के सामान, हथियार दुर्लभ फोटोग्राफ भी देख सकते हैं। डॉन बोस्को म्यूजियम का निर्माण रोमन कैथोलिक सेलेसियन सोसाइटी द्वारा करवाया गया था और इसका नाम डॉन बोस्को नामक इटली के एक मशहूर रोमन कैथोलिक संत के नाम पर ही रखा गया है। 1980 के दशक में इस मानव विज्ञान और सांस्कृतिक संग्रहालय की स्थापना की गयी जिसे आज डॉन बॉस्को संग्रहालय के नाम से जाना जाता है। सेक्रिड हार्ट चर्च के परिसर में स्थित इस म्यूजियम को कैथोलिक चर्च के सालेसियन ऑर्डर द्वारा चलाया जाता है। यह एशिया का सबसे बड़ा सांस्कृतिक संग्रहालय है।

आज तक मैंने जितने भी संग्रहालय देखे हैं, उनमें से यह संग्रहालय बेहद पेशेवर ढंग से संचालित किया जाता है। इसे आम संग्रहालय की तरह आप नहीं देख सकते इसे देखने की अच्छी खासी टिकट है वो इसलिए की यदि आप वाकई गंभीरता से जानकारी हासिल करना चाहते है तो ही आप यहाँ जाना पसंद करेंगे। यहां पर प्रदर्शित वस्तुओं को खूबसूरत व्यवस्थित ढंग से रखा गया है। यहां की प्रकाश व्यवस्था भी बहुत बढ़िया है, जो दर्शकों की आवाजाही के अनुसार स्वयं संचालित होती है। इससे एक तो बिजली की बचत होती है और प्रदर्शित वस्तुओं को भी लगातार कृत्रिम रोशनी का सामना भी नहीं करना पड़ता। इसके अलावा यहां के प्रत्येक प्रदर्शन कक्ष में टच स्क्रीन कियोस्क हैं, जो आपको प्रदर्शित वस्तुओं के बारे में काफी जानकारी प्रदान करते हैं। खास बात इस संग्रहालय की यह है कि यहाँ पर रखी गयी अधिकांश वस्तुएं बेहद प्राचीन हैं जिन्हें सभी राज्यों से एकत्र किया गया है जो मॉडल बनाये गए है वे बेहद सजीव लगते हैं।

इस संग्रहालय में कुल 20 दीर्घाएं (गैलरी) हैं। ये पूरा संग्रहालय सात मंजिला इमारत पर बना है इसके हर एक मंजिल में आप पूर्वोत्तर की अलग–अलग जनजातियों की रहन सहन की झांकियां देख सकते हैं। इसकी अलकोव्स गैलरी में सभी पूर्वोत्तर राज्यों की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की जानकारी मॉडलों के साथ प्रदर्शित की गयी है, सभी पूर्वोत्तर राज्यों के विभिन्न प्रकार के जनजातियों की मूर्तियां भी लगी हुई है, उनकी वेश–भूषा खानपान के बारे में बताया गया है। एक छोटा

सा मिनी म्यूजियम है जिसमें बच्चों के खेलने के लिए जगह दी गयी है, जिस वक्त अभिभावक संग्रहालय का

भ्रमण करते हैं उनके बच्चे वहां रूककर खेल सकते हैं। पडोसी देशों की गैलरी बनायीं गयी है, भारत के पड़ोसी देशों जैसे नेपाल, भूटान, चीन, म्यंमार और बांग्लादेश के बारे में बताया गया है। एक टच स्क्रीन कंप्यूटर की मदद से हर देश के बारे जानकारी मिल जाती है। फोटो गैलरी में उत्तर–पूर्व भारत के कुछ दुर्लभ फोटो रखे गए हैं। ब्लैक एंड वाइट फोटो पचास से साठ साल पुराने हैं। मिशन और कल्चर गैलरी में सभी संस्कृतियों को दर्शाया गया है। ईसाई समाज की स्थापना को लेकर जानकारी दी गयी है। प्रागेतिहासिक गैलरी में भारत के पूर्वोत्तर हिस्से के जनजातियों के दक्षिण–पूर्व एशिया में महत्व एवं उनके विकास के विभिन्न चरणों को दिखाया गया है। लैंड और पीपल गैलरी में पूर्वोत्तर भारत के प्राकृतिक स्वरूप और जनजातियों के रूपों को दिखाया गया है। मत्स्य, शिकारी, संग्रहण गैलरी में पुराने समय में मछली पकड़ने, शिकार करने तथा उन्हें रखने के लिए विभिन्न प्रकार के औजारों को दिखाया गया है। कृषि गैलरी में पूर्वोत्तर भारत के लोगों द्वारा खेती करने के विभिन्न तरीकों को दिखाया गया है. जैसे झूम कृषि, सीढ़ीनुमा खेती, वर्षा खेती आदि। परंपरा एवं प्रौद्योगिकी गैलरी में ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आर्थिक गतिविधियों तथा परम्पराओं को दर्शाया गया है। टोकरी गैलरी में बांस और घास–फूस के बने अनेक प्रकार के आकर्षक टोकरियों को प्रदर्शित किया गया है। वाद्य यंत्र गैलरी में आप पूर्वोत्तर भारत के संगीत सुन सकते हैं और उनके वाद्य यंत्रों को देख सकते हैं। धर्म एवं सांस्कृतिक गैलरी में विभिन्न धर्मों एवं सभ्यताओं के बारे में विस्तार से बताया गया है। हथियार गैलरी में पाषाण काल से लेकर आज तक इस्तेमाल किये गए विभिन्न हथियारों को दिखाया गया है। वेश–भूषा एवं आभूषण गैलरी में विभिन्न परिधानों तथा आभूषणों को रखा गया है। यहां पर प्रदर्शित चाँदी और पशुओं की हड्डियों से बने विविध प्रकार के आभूषण बेहद आकर्षक हैं इन्हें देखकर आपको अचरज होगा कि उस समय भी लोग साज श्रंगार के प्रति कितने सजग थे। डॉन–बोस्को कल्चर गैलरी में पांचों महाद्वीपों में डॉन बोस्को द्वारा किये गए शिक्षा के प्रचार–प्रसार और सांस्कृतिक योगदान को बताया गया है। हाउसिंग पैटर्न गैलरी में पूर्वोत्तर भारत में विभिन्न प्रकार के घर बनाने की शैली को दिखाया गया है। कला गैलरी में पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों के पेंटिंग्स और हस्त कलाओं का संकलन है। मीडिया एवं कल्चर गैलेरी यह सबसे अंतिम पड़ाव है, यहां पर एक सभागार है, जहां पर आगंतुकों के लिए उत्तर पूर्वी भारत के राज्यों से जुड़े कुछ चित्तरंजक विडियो प्रस्तुत किए जाते हैं जिसके द्वारा शिलांग की प्रसिद्ध और देखने योग्य जगहों के बारे में जानकारी दी जाती है। इसके अलावा यहां पर भारत के आठों पूर्वोत्तर राज्यों के विविध नृत्य प्रकारों के विडियो भी दिखाये जाते है। अंत में ईमारत की छत पर स्काईवॉक बनाया गया है, जिससे आप शिलांग शहर का मनमोहक और विहंगम नजारा देख सकते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों के दर्शन का इससे शानदार संग्रहालय तो कोई हो ही नहीं सकता।

कण्व ऋषि आश्रम

लेख

ललिता जोशी

दिल्ली से कोटद्वार लगभग 220 कि.मी. की दूरी पर है। इसे गढ़वाल का प्रवेशद्वार भी कहा जाता है और यहां से पौड़ी, लैंसडाउन, श्रीनगर और बद्रीनाथ भी जाया जा सकता है। कोटद्वार खोह नदी के किनारे हिमालय की तलहटी में बसा शहर है । यहां का रेलवे स्टेशन 1890 में बनाया गया था जहां आकर रेलवे लाइन खत्म हो जाती है। यहां के मुख्य बस अड्डे से 14 कि.मी. दूरी पर कण्व ऋषि का आश्रम है। चलिए कण्व आश्रम की ओर। इस आश्रम का निर्माण एक गैर सरकारी संस्था ने किया। आश्रम मालिनी नदी के बाएं तट पर घने जंगल के बीच है। यह बहुत सुंदर और सुरम्य स्थान हैं जहां कलकल करती मालिनी नदी की आवाज़ सुनाई देती रहती है। गर्मियों के समय मालिनी नदी में पानी बहुत कम हो जाता है लेकिन वर्षा ऋतु में मालिनी नदी का वेग प्रचण्ड होता है।

मान्यता है कि हस्तिनापुर के राजा दुष्यंत शिकार करते हुए भटक गए और कण्वाश्रम जा पहुंचे। कण्व ऋषि तीर्थ यात्रा पर थे। शकुंतला जिसे ऋषि ने बेटी की तरह पाला था ने, राजा दुष्यंत की आवभगत की। राजा दुष्यंत और शकुंतला में प्रेम हुआ और उन्होंने गंधर्व विवाह कर लिया। राजा दुष्यंत ने वापिस जाते हुए शकुंतला को अंगूठी पहनाई और कहा कि हस्तिनापुर आकर मिले। शकुंतला राजा दुष्यंत की स्मृतियों में घिरी रहती थी और शकुंतला को यह भी स्मरण नहीं रहता था कि कोई आया भी है। ऐसे ही एक समय दुर्वासा ऋषि वहां पहुंचे, लेकिन शकुंतला दुष्यंत के प्रेमस्मृति में डूबी हुई थी। अपनी उपेक्षा देखकर ऋषि दुर्वासा अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने शकुंतला को श्राप दिया कि वो जिसकी याद में वह खोई हुई है वह व्यक्ति ही उसे विस्मृत कर देगा। शकुंतला अपने इस कृत्य पर शर्मिंदा हुई और उसने ऋषि माफी मांगी और ऋषि थोड़े पसीजे और उन्होंने कहा कि तुम्हें अपनी याद दिलाने के लिए राजा दुष्यंत को उनके द्वारा ही उपहार में दी गई अंगूठी राजा दुष्यंत को दिखानी पड़ेगी। कण्व ऋर्षि जब वापस लौटे तो शकुंतला ने उन्हें राजा दुष्यंत के साथ अपने गंधर्व विवाह के बारे में बताया, तो उन्होंने शकुंतला को विदा करने के लिए समय निश्चित किया और निश्चित समय पर शकुंतला को हस्तिनापुर भेज दिया, लेकिन इस बीच शकुंतला को उपहार स्वरूप मिली अंगूठी नदी में गिर गई और जिसे एक मछली ने निगल लिया। जब शकुंतला राजा से मिली तो राजा दुष्यंत ने उसे पहचाना ही नहीं और शकुंतला को महल से वापस भेज दिया। उधर एक मछुआरे को वह मछली मिली और उसने जब उस मछली को काटा तो उसे मछली के पेट से एक मूल्यवान अंगूठी मिली। मछुआरा अंगूठी बेचने के लिए बाजार गया तो उसे राजा के लोगों ने अंगूठी सहित पकड़ लिया। जब मछुआरे को राजा के समक्ष पेश किया गया तो उसने बताया कि उसे यह अंगूठी मछली के पेट से मिली है। राजा को अंगूठी देखते ही राजा शकुंतला की याद आ गई और शकुंतला को खोज कर वापस हस्तिनापुर लाया गया। राजा दुष्यंत और शकुंतला की एक संतान (भरत) उत्पन्न हुई। यही

भरत कालांतर में चक्रवर्ती सम्राट बने और इन्हीं के नाम पर भारतवर्ष का नाम भारत पड़ा।

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने इसी घटना पर एक नाटक ''अभिज्ञान शाकुंतलम'' लिखा और इस रचना से राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रसंग को और प्रसिद्धी मिली। कालिदास द्वारा कण्व ऋषि के आश्रम का जो वर्णन ''अभिज्ञान शाकुंतलम'' में किया गया है ठीक वैसा ही कण्व–आश्रम हमें देखने को मिला।

जिस चक्रवर्ती सम्राट के नाम पर हमारे देश का नाम रखा गया है उसकी जन्म स्थली इतनी उपेक्षित है, जिसका वर्णन करना दुखद है। यहां पर उस समय के कुछ भग्नावशेष भी मिलते हैं, लेकिन अधिकांश भग्नावशेष या तो नष्ट हो चुके हैं या उन्हें लोगों द्वारा उठा लिया गया है।

यह कहा जाता सकता है कि कण्व ऋषि की तपोस्थली को भव्य रूप दिया जा सकता था, लेकिन अभी तक यह जीर्णोद्धार की प्रतीक्षा में है। यहां पर लोग अक्सर

आते हैं, लेकिन यहां न तो कोई सार्वजनिक शौचालय है और न ही कोई रेस्टोरेंट। यहां पर कभी–कभार छात्र व सैलानी आ जाते हैं। मालिनी नदी के दूसरी तरफ एक सरकारी गेस्टहाउस है, वह भी उपेक्षित सा ही है। कण्व आश्रम पहुंचने का मार्ग भी बहुत अच्छी अवस्था में नहीं है। इस क्षेत्र में पर्यटन की असीम संभावनाएं हैं, लेकिन उपेक्षा के कारण यहां पर बाहर के पर्यटक कम आते हैं और स्थानीय लोग ही यहां पर घूमने के लिए आते रहते हैं। इस आश्रम में बसंत पंचमी के दिन बड़ा मेला लगता है, जिसमें हजारों लोग जुटते हैं।

मैं ऐसे धर्म को मानता हूं जो स्वतंत्रता, समानता और भाई-चारा सिखाये।

- डॉ. भीमराव अम्बेडकर

इतिहास

बृहत्कथा-गुणाड्य का एक अज़ीम शाहकार

रविन्द्र 'रवि'

कथाएं भी इतिहास की ही तरह अपना भूतकाल समझने में काफी हद तक मदद कर सकती हैं। जैसे इतिहास के पन्ने खुद को दोहराते हैं इसी तरह कथाएं भी उन वाकात को दोहराने के एक अहम वसीले का किरदार निभाती हैं, जो वाकात कभी रूणमा हुए होंगे। कथाएं न सिर्फ दिलबहलाई का ही काम देती हैं बल्कि बीते हुए कल की गवाही भी देती हैं। इनमें भी अहम घटनाओं की सदाऐ बाज़गश्त सुनने को मिलती है। ये कथाएं चाहे प्राचीन ही क्यों न हों, समाज में एक बदलाव लाने का काम भी कर सकती हैं। भारत ही शायद एक ऐसा देश है जो कथाओं के बेशबहा खज़ाने से मालामाल है। यहां के एक–एक शब्द, स्वांस /चप्पे–चप्पे और कदम–कदम के साथ एक–एक कहानी जुड़ी हुई है। इनमें आपबीती भी है और जगबीती भी। हमारे भारत की कथाओं का एक प्राचीन इतिहास है। जो हमारे शानदार और उज्ज्वल भूतकाल की निशानदेही करता है। इंसानी जन्म के साथ ही बोलचाल भी अपना स्वरूप धारण करने लगा। ज्यों–ज्यों इंसान एक–एक कदम आगे बढ़ाने लगा उसके दिल व दिमाग में पता नहीं कौन–कौन से और कैसे–कैसे ख्यालात उठे होंगे। क्या–क्या देखा होगा। क्या–क्या महसूस किया होगा और क्या विश्लेषण किया होगा। वापस आकर इन तजुर्बों को जरूर दोहराया होगा। इन विचारों ने जरूर एक कहानी की शक्ल इख्तियार की होगी। कभी–कभार इस इंसान ने यह दलील किसी दूसरे व्यक्ति को सुनाई होगी। इस तरह से कथा सुनने–सुनाने की शुरुआत हुई होगी। इस तरह से हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि कहानी का जन्म भी उतना ही पुराना है जितना की इंसानी तहजीब का। आरंभिक काल में इंसान की सांस्कृतिक क्षेत्र में अभिव्यक्ति ज्यादातर पदि में ही हुई। हमारे देश की अधिकतर प्राचीन कथाएं गद्य के बजाये पद्य में ही मिलती हैं। अपने प्राचीन काल के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक हालात आदि के बारे में जानने के लिए कथाएं चाहे वे दंत कथाएं हों या लिखित कथाएं हों एक महत्वपूर्ण योगदान अदा करती हैं। इस तरह हमें अपने अतीत को समझने में और परखने और महसूस करने का एक अहम वसीला इन कथाओं के ज़रिये उपलब्ध होता है।

एकसाथ बृहत्कथा एक अत्यंत प्राचीन कथाओं का संग्रह है। यह कहानियां बहादुरों, राजाओं, परियों, भूतप्रेतों, पशु–पक्षियों, इंसानों और उन से संबंधित विषयों पर आधारित हैं। बृहत् कथा का शाब्दिक अर्थ है बड़ी कथा। कइयों का मानना है कि यह एक तवील कथा है। कई तो इसे भारतीय कथाओं का खज़ाना मानते हैं।

महान कवि और विद्वान गुणाड्य द्वारा लिखित बृहत्कथा पैशाच भाषा में है। यह कथा छंदों में लिखी गई है और इसमें एक लाख श्लोक हैं। माना जाता है कि बृहत्कथा में सात लाख श्लोक थे, लेकिन अब मात्र एक लाख श्लोक ही मिलते हैं। इसका कारण है:– कहते हैं कि गुणाड्य राजा सातवाहन के मंत्री थे। गुणाड्य चूंकि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के बड़े विद्वान थे लिहाज़ा उनका काफी आदर सत्कार किया जाता था। महाराजा सातवाहन की संस्कृत पर पकड़ अच्छी नहीं थी। उनकी रानी काफी विद्वान थी और राजा के मुकाबले में उन्हें संस्कृत भाषा में काफी महारत हासिल थी और वे अच्छी संस्कृत बोलने में सक्षम थीं, लेकिन राजा सातवाहन संस्कृत न बोल पाने के कारण मायूस और उदास रहा करते थे। एक दिन जब रानी को यह पता चला कि राजा संस्कृत में कमज़ोर हैं तो वे उनसे मज़ाक करने लगीं और राजा से यह बर्दाश्त न हो सका। उन्होंने यह प्रण किया कि वह संस्कृत सीख कर ही दम लेंगे। एक दिन राजा सातवाहन ने गुणाड्य और शर्ववर्मा को बुलाया और उनसे कहा कि वे कम से कम समय में संस्कृत व्याकरण में उन्हें महारत हासिल करायें। गुणाड्य के मुताबिक

यह विद्या हासिल करने में बारह साल का समय लगता था। गुणाड्य कम से कम समय में संस्कृत सिखाने में असमर्थ थे। फिर भी उन्होंने राजा को यह आश्वासन दिया कि वे उन्हें यह विद्या सिर्फ छह साल में सिखायेंगे। दूसरी तरफ शर्ववर्मा ने, जो कि काफी चालाक थे, राजा को आश्वासन दिया कि वे उन्हें सिर्फ छह महीने में ही संस्कृत व्याकरण सिखा देंगे। इस पर गुणाड्य बोल पड़े कि यह संभव नहीं है। यदि शर्ववर्मा राजा को छह महीने में संस्कृत व्याकरण सिखा देंगे तो मैं मंत्रिपद छोड़ दूंगा और संस्कृत में लिखना भी छोड़ दूंगा। शर्ववर्मा ने राजा को छह माह में संस्कृत व्याकरण सिखाने के लिए जी–तोड़ मेहनत की और राजा ने संस्कृत व्याकरण पूरी तरह सीख ली। गुणाड्य शर्त हार गए और अपना मंत्रिपद त्याग कर विंध्याचल पर्वत चले गए। गुणाड्य जंगलों में दर–ब–दर घूमते रहे उनका दिल टूट चुका था और उन्होंने संस्कृत, पाली और प्राकृत को बिल्कुल ही नज़रअंदाज कर दिया। पलायन के बाद वे एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहे। इस बीच वे काणभूति नामक एक शख्स से मिले। उन्होंने गुणाड्य को बहुत कहानियां सुनाईं। गुणाड्य इन कहानियों को बहुत ही शौक से सुनते थे और उन्हें यह कहानियां बेहद पसंद आईं। गुणाड्य ने इन कहानियों को लिखने का निर्णय लिया। लेकिन उन्होंने संस्कृत छोड़ने की कसम खाई थी लिहाज़ा उन्होंने ये कथाएं पैशाच भाषा में लिखनी आरंभ की। उन्होंने इन कथाओं को एक पुस्तक का रूप दिया। इसमें सात लाख श्लोक लिखे गए। यह पुस्तक किसी तरह से राजा के पास पहुंच गई। राजा को पहले से ही गुणाड्य पर गुस्सा था, इसलिए उन्होंनें इस पुस्तक पर कोई ध्यान नहीं दिया और उन्हें और भी गुस्सा आ गया तो उन्होंने इस पुस्तक को रद्द कर दिया। काणभूति के अनुसार यह किताब चमड़े पर लिखी गई थी। राजा द्वारा यह ग्रन्थ खारिज किए जाने पर गुणाड्य अत्यंत निराश हो गए। वह यह निरादर किसी भी सूरत में न सह सके। कइयों का कहना है कि उन्होंने यह कहानियां इंसानी खून से लिखी हैं। गुणाड्य इतने गमगीन और उदास हो गए कि उन्होंने आग जलाई और एक–एक करके कहानियां पशु–पक्षियों को सुनाते गए और जो–जो पृष्ठ वे पढ़ते गए उस पृष्ठ को आग की नज़र करते गए। इस तरह छह लाख श्लोक आग में भस्म हो गए। ऐसा कहा जाता है कि पशु–पक्षी भी इस दौरान निराहार रहकर कथा श्रवण में लीन रहने के कारण कमजोर हो गए और गुणाड्य भी। यह दास्तान राजा सातवाहन तक पहुंच गई। राजा को गुणाड्य के इस अद्भुत कार्य का एहसास हुआ और साथ ही अपनी गलती का भी। उन्होंने गुणाड्य को आदर–सत्कार के साथ वापस बुलाया और एक लाख श्लोकों को जैसे–तैसे बचाया गया। राजा सातवाहन ने गुणाड्य से माफी मांगी और बचे एक लाख श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद करवाया। मगर गुणाड्य ने मंत्री पद स्वीकार नहीं किया। यह भी कहा जाता है कि ''बृहत्कथा में पांडववंश के वत्सराज के पुत्र नरवाहनदत्त का चरित(कथा) वर्णित है। इसका मूलरूप प्राप्त नहीं होता, किंतु यह कथासरितसागर, बृहत्कथामंजरी तथा बृहत्कथाश्लोकसंग्रहः आदि संस्कृत ग्रंथों में रूपान्तरित रूप में विद्यमान है। पंचतंत्र, हितोपदेश, वेताल पंचविंशा, कथाएं संभवतः इसी से ली गई हैं।''(विकीपीडिया) गुणाड्य के इन बाकी बचे एक लाख छंदों का राजा सातवाहन ने संस्कृत में अनुवाद करवाया। यह एक लाख श्लोक बृहत्कथा कहलाए। इसी बृहत्कथा का आगे चलकर संस्कृत में तरजुमा किया गया। कश्मीरी इतिहासकार अवतार कृष्ण राहबर लिखते हैं, ''बृहत्कथा के आधार पर जो किताबें संस्कृत में लिखी गई, इनमें सोमदेव की 'कथा सरितसागर', शेमेन्द्र की 'बृहत्कथा–मंजरी' और सोम ईश्वर की 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' का भी ज़िक्र है। बृहत्कथा के बाकी बचे हुए हिस्से के तर्जुमे और भी बहुत सारी भाषाओं में किए गए हैं, जिनमें 'नेपाली', और 'जर्मन', तर्जुमा भी शामिल है। 'नेपाली' तर्जुमा आठवीं शताब्दी में हुआ। नेपाली और सोमदेव का तर्जुमा काफी पुराना है। शेमेन्द्र का तर्जुमा बेहतर है और असल के करीब माना जाता है। शेमेन्द्र ने उन बातों का भी इनकिशाफ किया है, जिनके अंतर्गत बृहत्कथा लिखी गई थी।' संस्कृत में बृहत्कथा के कई और अनुवाद किए गए हैं, मगर शेमेन्द्र के अनुवाद को ही ज्यादा महत्व मिला है। लेखक एवं ब्रॉडकास्टर मोतीलाल जेलखानी बृहत्कथा पर अपनी राय ज़ाहिर करते हुए कहते हैं, '11वीं शताब्दी में संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान शेमेन्द्र बृहत्कथा का एक खुलासा कविता के रूप में पेश करते हैं.....शेमेन्द्र का कहना है कि बृहत्कथा मूलतः पैशाच भाषा में है। शेमेन्द्र की इस रचना में बृहत्कथा की हयत और मुवाद का पता चलता है। यह रचना यानि 'बृहत्कथा मंजरी' बहुत ही सरल एवं स्पष्ट ज़बान में

लिखी गई है। शेमेन्द्र के बाद सोमदेव भी इसका अनुवाद करते हैं और वे कहते हैं कि उन्होंने अनुवाद असली पाठ से किया है। इससे ज़ाहिर होता है बृहत्कथा का असली 'पैशाच' मूल लेख उन दोनों के पास था। शेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी से काफी हद तक असली बृहत्कथा लिखने की तारीख और ज़माने का पता चलता है।''

सोमदेव ने भी गुणाड्य की बृहत्कथा का संस्कृत में अनुवाद किया। यह अनुवाद 'कथासरितसागर' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुआ था। प्रो. महयूद्दीन हाज़नी के मुताबिन कइयों का मानना है कि सोमदेव की कथासरितसागर पर बृहत्कथा मंजरी का असर है।

शेमेन्द्र और सोमदेव दोनों ही कश्मीरी विद्वान थे और दोनों के विषय में यह कहा जाता है कि इन्होंने राजा अनंत के ही समय में अपने ज्ञान का प्रकाश बिखेरा था। लेखक 'अरजनदेव मजबूर' कथासरितसागर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि ''पहले कई सारे इस शक में थे कि शेमेन्द्र और सोमदेव एक ही हैं। मगर 1871 में 'बोहलर' ने यह साबित कर दिया कि यह दो अलग–अलग विद्वान हैं। जिन्होंने अलग–अलग बृहत्कथा का अनुवाद किया।'' कथासरितसागर के कई हिंदी अनुवाद भी शाया हो चुके हैं। मजबूर साहब लिखते हैं कि ''कथासरितसागर महज़ दिल बहलाई का ज़रिया ही नहीं है, बल्कि इसमें उस समय के समाज में महिलाओं के रूतबे और शहरों के दिलचस्प किस्से बयां किए गए हैं।''

अधिकांश का मानना है कि बृहत्कथा छठी शताब्दी से पहले लिखी गई है। कंबोडिया के एक शिलालेख पर बृहत्कथा का उल्लेख मिलता है।

मोतीलाल जेलखानी के अनुसार बृहत्कथा मंजरी और कथासरितसागर किताबों में काफी समानताएं हैं। दोनों के 18–18 भाग हैं, जिनमें अलग–अलग नाम हैं। जेलखानी साहब के मुताबिक बृहत्कथा छठी शताब्दी में लिख ली गई होगी।

बृहत्कथा न सिर्फ अपनी कथाओं से पाठकों को तफरी का सामान उपलब्ध कराती है। यह अपने ज़माने के भारत का हाल भी बयां करती है। इन कथाओं में ज्ञान भी है और शखशा भी है। संस्कृत के विद्वान 'बद्रीनाथ कल्ला' बृहत्कथा को भारत की सबसे पुरानी किताब मानते हैं। आप लिखते हैं कि रामायण और महाभारत की तरह यह किताब भारत की साहित्यकला का एक खज़ाना थी। वाल्मीकि और व्यास को जो सम्मान विद्वानों ने दिया है वही रूतबा गुणाड्य को भी दिया गया है। कल्ला साहब मज़ीद लिखते हैं कि कई विद्वानों का कहना है कि बृहत्कथा का स्रोत रामायण की कथा है। इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि गुणाड्य को रामायण, महाभारत और बुद्ध की जातक कथाओं का काफी ज्ञान था।'' बृहत्कथा के बारे में यह भी कहा जाता है कि यह पद्य में नहीं बल्कि गद्य में लिखी गई है।

लेखक मिशल सुल्तानपुरी का मानना है कि बृहत्कथा कहानियों की एक किताब है। यह प्राकृत युग की देन है। मूल पुस्तक उपलब्ध नहीं है, नहीं तो इतनी कयास आराई करने की गुंजाईश नहीं थी। इस पुस्तक के सिर्फ अनुवाद मिलते हैं। 'बद्रीनाथ कल्ला' कहते हैं, ''शेमेन्द्र के अनुसार गुणाड्य का जन्म दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के निकट प्रतिष्ठान नगर में हुआ। यह सातवाहन खानदान और आंध्रप्रदेश की राजधानी थी। महाभारत के मुताबिक प्रतिष्ठान/गंगा और जमना के पास एक तीर्थ था।'' यह भी माना जाता है कि गुणाड्य आगराह के थे।
बृहत्कथा केवल कहानियों का एक बड़ा खज़ाना ही नहीं, जो पढ़ने वालों का मनोरंजन करता हो यह इतिहास भी है। जिंदगी से जुड़े वाकयात की आपबीती भी है और अपने जमाने की जगबीती भी है। गुणाड्य जैसे विद्वान को अपने आस–पड़ौस पर गहरी निगाह रहती थी और हालात का गहराई से मुताला किया करते थे। यह भी कहा जा सकता है कि गुणाड्य ने बाज़ाबिता तौर पर कहानियां लिखने की एक मज़बूत नींव रखी इसी आधारशिला पर आगे चलकर कहानियां लिखने का रिवाज पूरी तरह से स्थापित हुआ। गुणाड्य कहानी के फन से पूरी तरह वाकिफ थे। उनकी नज़रों के सामने जो भी वाका गुज़रा उन्होंने उसे जुबान दी। ऐसा कौन–सा मामला है जो कि गुणाड्य की नज़रों से ओझल हुआ हो। सतीप्रथा हो या महिलाओं की समस्याएं, मठ के झगड़े, जुल्मों सितम, साहित्य, संस्कृति, संगीत जैसे विषयों पर भी गुणाड्य ने अपनी कलम उठाई। इन कहानियों में एक नाटकीयता भी है और यह पाठकों का दिल जीत लेती हैं।

बृहत्कथा और इसके रचयिता गुणाड्य ने जो मुकाम भारत के इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति को प्रदान किया वो देश की अज़मत को चार–चांद लगाता रहेगा।

किस्सा कुछ यूं था

बाबासाहब नहीं लड़ते तो आपको 12 से 14 घंटे काम करना पड़ता

14 अप्रैल संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर की जयंती है। ऐसे में हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत आज जैसा है, उसे वैसा बनाने में बाबासाहब का कितना महत्वपूर्ण योगदान रहा। संविधान निर्माण के अलावा भी उनका एक योगदान ऐसा है, जिसने आजादी के पहले से आज तक हर नौकरीपेशा, कामगार या मजदूर के जीवन को प्रभावित किया है। और वह योगदान था दिन में काम के घंटों को 12 या 14 से घटाकर 8 करवाना।

यह किस्सा उस दौर का है जब देश में अंग्रेजों का राज था और देश में ब्रिटिश सत्ता की ओर से शीर्ष व्यक्ति होते थे वायसराय। तब प्रशासनिक कामकाज संचालित करने के लिए 'वायसराय की एक्जिक्यूटिव काउंसिल' गठित की जाती थी। इसमें अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते थे जो वायसराय को सलाह देते थे। उसी आधार पर प्रशासनिक नीतियां बनती थीं।

गठन के कई साल बाद डॉ. अम्बेडकर को उनकी बुद्धिमत्ता, गहन अध्ययन और प्रखर सोच के चलते वायसराय की एक्जिक्यूटिव काउंसिल में श्रम सदस्य नियुक्त किया गया। तब उन्होंने सबसे अहम सलाह यही दी कि 'काम के घंटे 12 या 14 से घटाकर 8 कर दिए जाएं।' अंग्रेजों ने ना-नुकुर की, लेकिन बाबासाहब ने इतने प्रखर तर्क दिए कि काउंसिल ना नहीं कर सकी। अंतत: यह नियम बन गया। आज भी यदि आप 12-14 के बजाय आठ घंटे ही काम कर छुट्टी पा लेते हैं, तो बाबासाहब को धन्यवाद दीजिए।

साभार–https://in.pinterest.com/pin/300263500147436130/

(पृष्ठ 49 का शेष)

दुनिया भर को 1945 में ही यह आभास मिल चुका था कि अंग्रेज अब ज्यादा दिन भारत में नहीं रह सकते। 24 मार्च, 1946 को 'कैबिनेट मिशन' भारत आया। उसके सामने अम्बेडकर ने फिर दावा पेश किया कि अनुसूचित जातियों के लिए बुनियादी अधिकार और पृथक मतदान की व्यवस्था की जाए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से कहा कि अछूतों को अल्पसंख्यक घोषित करके उन्हें संरक्षण दिया जाए और वह संरक्षण साधारण बहुमत के द्वारा समाप्त न किया जा सके। 1932 के पूना पैक्ट में यदि अम्बेडकर ने पृथक मतदान की मांग से पीछे हटने के बदले यह कहा होता कि मिल कारखानों में श्रमिकों की भर्ती में अछूतों को उचित आरक्षण दिया जाये और कृषि भूमि को जमींदारों से मुक्त कराने के साथ ही उन भूमिहीन मजदूरों को भी भूमि दी जाये जिनका जीवन कृषि श्रम पर निर्भर है तो यह मांग स्वीकार हो सकती थी इसके परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति निश्चित रूप से सुधरती। हां अम्बेडकर ने उन्हें राजनीतिक स्वाधीनता अवश्य दिलाई थी नौकरियों का आरक्षण तो केवल आंशिक उपलब्धि है।

बाबा साहब

कविता

हरि प्रकाश सिंघल

'बा बा साहब हमारे भाग्य विधाता'
भारत के संविधान निर्माता।

महिलाओं और दलितों को दिए अधिकार,
सबके सपनों को किया साकार।

मध्य प्रदेश के महू में लिया जन्म,
मान लिया मानवता को अपना कर्म।

14 अप्रैल को आता इनका जन्म दिवस,
लोगों के लिए कार्य किया इन्होंने बरबस।

जीवन था उनका संघर्षों से भरा,
फिर भी अपने हर वादे को किया पूरा।

देशहित में किए कई कार्य महान,
लोगों के अधिकारों हेतु किया संविधान का निर्माण।

दबे–कुचलों और शोषितों को राह दिखाया,
आजादी और आत्मसम्मान का महत्व बतलाया।

देशहित के लिए सहे हर अपमान,
इसलिए आओ करे बाबा साहब का सम्मान।

आदमी और सपने

अनुभव बैरवा

सपनों की भी है अजीब दुनिया
चाहे मन स्वस्थ हो या अस्वस्थ।
नहीं पड़ता कोई फर्क
आदमी के सपनों पर।
उनका तो आगमन निरन्तर
है, चलता रहता।
सपनों के आने से आदमी के उदास चेहरे में
जीवन को मिलती है नई राह।
एक नई चाह
चमकती है।
एक नई रोशनी घोर अंधेरे में
और नजर आता है।
एक सुन्दर आईना।
चेहरे के सामने
दमकता है।
जिसमें चेहरे का नूर।
और हंस रहे हैं आप खिलखिलाकर
फिर भी अक्सर कहते हैं, लोग
सपनों से मन की
बढ़ती है उदासी
होता है, अहसास भय का
नियति है, व्यक्ति के सोचने की
नीरस है जीवन सपनों के बिना
सपने हैं तो जीवंत लगता है आदमी

आलोक

अनुभव बैरवा

समझ नहीं पा रहा हूं,
कहां से हो
कविता का आरंभ।
मन में भारी उलझन है
जो बनकर कविता उभरे
लेकिन मैं हताश नहीं हूं
करूंगा तलाशने की कोशिश
खामोश चेहरों में
जो सदियों से बंद पड़े
रास्तों पर तलाश रहे हैं आशियाना
बुन रहे हैं
नित नये सपने
ओझल होने लगी हैं
चेहरे से खामोशी
करवट बदलने लगा है
स्याह अंधेरा
उभरा रहा है
जीवट का नया सवेरा
आंखें खोल रहे हैं
जीवन के सभी सितारे
नजर आ रही है
दूर क्षितिज पर
मंजिल का अदम्य आलोक

DELHIN/2012/43376

समाचार सेवा प्रभाग आकाशवाणी

आकाशवाणी समाचार
ALL INDIA RADIO NEWS

आकाशवाणी समाचार
संसद मार्ग, नई दिल्ली-110 001
www.newsonair.com

समाचार सेवा प्रभाग, आकाशवाणी, नवप्रसारण भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110 001
की ओर से सहायक निदेशक द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित तथा वेद एन्टरप्राईजेज
2316, काली मस्जिद, सीताराम बाजार, दिल्ली-110 006 से मुद्रित